सूरज का ख़ज़ाना

मिख़ाईल प्रीश्विन

परिकल्पना प्रकाशन

ISBN 81-87425-75-X

सूरज का ख़ज़ाना

कहानियाँ

मिख़ाइल प्रीश्विन

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

ISBN: 81-87425-75-X

मूल्य : रु. 40.00

प्रथम संस्करण : **जनवरी, 2006**

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 द्वारा प्रकाशित

क्रिएटिव प्रिन्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : **रामबाबू**

SURAJ KA KHAZANA : *stories by* ***Mikhail Prishvin***

संकलन के बारे में

मिख़ाईल प्रीश्विन (1873-1954) न केवल रूसी सोवियत साहित्य के बल्कि समूचे विश्व साहित्य के एक अनुपम-अनन्य लेखक माने जाते हैं। हिन्दी पाठकों के समक्ष उनके अनूठी रचनात्मकता की एक बानगी प्रस्तुत करने के लिए हम उनकी दो प्रतिनिधि कहानियों का यह संकलन प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रीश्विन का जन्म ओर्योल प्रान्त के एक व्यापारी परिवार में हुआ था। रीगा के पॉलिटेक्निकल इंस्टीट्यूट में पढ़ते समय उन्हें क्रान्तिकारी मार्क्सवादी मण्डली में भाग लेने के लिए गिरफ़्तार किया गया था जिसके बाद रूस के सभी उच्च शिक्षा-संस्थानों के दरवाज़े उनके लिए बन्द हो गये। जर्मनी जाकर 1902 में उन्होंने लाइप्जिग विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र संकाय के कृषि विभाग में शिक्षा सम्पन्न की। रूस लौटकर उन्होंने कृषिशास्त्री के रूप में काम किया और कृषि-व्यवस्था के बारे में कई लेख लिखे। बाद में उनकी रुचि लोक साहित्य और नृजाति विज्ञान में जागी। उन्होंने पूरे देश में व्यापक भ्रमण किया तथा शिक्षा और विभिन्न इलाकों के अध्ययन के क्षेत्र में भी व्यापक कार्य किया। अपनी पहली कहानी उन्होंने तीस वर्ष की आयु में लिखी। परिमाण की दृष्टि से उन्होंने बहुत अधिक नहीं लिखा, लेकिन गुण की दृष्टि से उनके अधिकांश लेखन को उत्कृष्ट कहा जा सकता है।

जीवन और साहित्य—दोनों में ही प्रीश्विन ने अपनी अस्मिता को बनाये रखा। प्रकृति के सूक्ष्मतम भेदों को जानने और प्रकृति में मानव की आत्मा के उत्तम पक्षों को खोज निकालने की अदम्य उत्कण्ठा उनके सृजन की विशिष्ट अभिलाक्षणिकता मानी जाती है। कहा जाता है कि एक महान कवि विश्व को हमेशा एक बच्चे की निगाह से देखता है, जैसे कि वह वास्तव में उसे पहली बार देख रहा हो। यह बात प्रीश्विन पर भी लागू होती है। पृथ्वी, इसके निवासियों और सभी पार्थिव चीज़ों के प्रति उनके दृष्टिकोण में लगभग बालसुलभ सुस्पष्टता और सादगी थी। प्रीश्विन की गणना रूसी प्रगीतात्मक गद्य के शिखर-पुरुषों में की जाती है। उनके लेखन के ये विशिष्ट गुण पाठकों को इन कहानियों में भी देखने को मिलेंगे।

—कात्यायनी

अनुक्रम

जिन्सेंग 7

सूरज का ख़ज़ाना 81

जिन्सेंग

(जीवन की जड़)

1

तृतीय कल्प के जन्तुओं ने अपनी जन्मभूमि को नहीं त्यागा जब वह हिमावृत्त हो गयी, और अगर वह एकदम हो गयी होती तो बाघ बर्फ़ पर अपने चिह्नों को देखकर कितना भयभीत हुआ होता! बस इसी तरह भयंकर बाघ भी और दुनिया का एक सुन्दरतम, कोमलतम और चारुतापूर्ण जीव—चीतल मृग भी और अद्भुत वनस्पतियां—वृक्ष सदृश पर्णांग, एरालिया और जीवन की जड़—सुप्रसिद्ध जिन्सेंग भी अपनी जन्मभूमि छोड़कर नहीं गये। इस सन्दर्भ में पृथ्वी पर मानव की शक्ति के बारे में सोचे बिना कैसे रहा जा सकता है जब अगर उपोष्ण प्रदेश के हिमावृत्त होने पर भी वहाँ से न भागे जन्तु, 1904 में मंचूरिया में मानव की तोपों की गरज से भाग खड़े हुए। कहते हैं कि इसके बाद वहाँ से बहुत दूर, उत्तर में, याकूतिया के टैगा वनों में बाघ दिखायी देने लगे। और मैं भी जन्तुओं की तरह यह न सह सका। हमारी खन्दक की ओर आते घातक गोले के चीत्कार को मैंने सुना था और वह आज तक मुझे खूब अच्छी तरह याद है और उसके बाद—कुछ नहीं। लोग भी बस कभी-कभी ऐसे ही मरते हैं : कुछ नहीं! पता नहीं कितना समय बीता था, मेरे इर्द-गिर्द सब बदल गया : कोई ज़िन्दा न बचा, न हमारे लोग थे, न दुश्मन के, रणभूमि में चारों ओर मृत लोग और घोड़े पड़े थे, गोलों और कारतूसों के खोल, तम्बाकू के खाली पैकट बिखरे थे और ज़मीन चेचक के दागों की तरह, ठीक वैसे ही गड्ढों से ढकी थी जैसे मेरे आसपास थे। कुछ सोचकर मैंने, जो सिर्फ एक रिवाल्वर से लैस कीमियाई सफरमैना था, एक अच्छी-सी रायफल चुनी और अपने किट बैग में ज़्यादा से ज़्यादा कारतूस भर लिये। मैं अपनी टुकड़ी को ढूँढ़ने नहीं गया। मैं केमिस्ट्री का सबसे अध्यावसायी छात्र था, मुझे वारण्ट अफ़सर बना दिया, मैं बहुत देर तक यह सहता रहा और जब लड़ाई में कोई तुक नहीं रही मैं बस चला गया सब छोड़-छाड़कर अपनी नाक की सीध में। बचपन से ही अज्ञात प्रकृति मुझे अपनी ओर खींचती थी। और अब मैं मानो किसी स्वर्ग में पहुँच गया जिसे मेरी ही रुचि के अनुसार बनाया गया हो। अपने देश में मैंने कहीं भी प्रकृति का ऐसा विस्तार न देखा था जैसा मंचूरिया में : वनाच्छादित पर्वत, इतनी ऊँची घासवाली घाटियाँ कि घुड़सवार ही उसमें

पूरा का पूरा छिप जाये, अलावों जैसे बड़े-बड़े लाल फूल, चिड़ियों जैसी तितलियाँ, फूलों से पटी नदियाँ। भला ऐसा मौका फिर कभी मिल सकता है अछूती प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द विचरने का! यहाँ से कुछ दूर रूस की सीमा थी जहाँ ठीक ऐसी ही प्रकृति थी। मैं उस ओर चल पड़ा और शीघ्र ही मुझे पहाड़ी के ढलान पर नाले की बालू पर बकरियों के खुरों के ऊपर जाते असंख्य चिह्न दिखायी पड़े—यह घूमन्तू* बकरियाँ और कस्तूरीमृग उत्तर की ओर हमारे रूस को जा रहे थे। बहुत दिनों तक मै उनके पास न पहुँच सका पर एक बार, पहाड़ी के उस पार, जहाँ माइखे नदी का उद्‌गम है मुझे पहाड़ी दर्रे में ऊँचाई पर उसकी एक ढाल पर एक बकरा दिखायी दिया—वह एक शिलाखण्ड पर खड़ा था और जैसा कि मैं समझा, उसे मेरी भनक पड़ गयी और वह मुझे अपने ही ढंग से कोसने लगा। उस समय तक मेरे पास जितने भी रस्क थे वे समाप्त हो चुके थे और दो दिन से मैं गोल-गोल सफ़ेद खुमियाँ खाकर गुजारा कर रहा था जो पककर पैरों तले फूट जाती है। ये खुमियाँ खाने में ठीक ही थीं और उनसे लगभग वैसा ही नशा होता जैसा अंगूरी से। मेरी भुखमरी में यह बकरा मेरे बड़े काम का था और मैं विशेष ध्यान के साथ उसका निशाना साधने लगा। जब रायफल की मक्खी बकरे को टटोल रही थी मुझे उससे कुछ नीचे बलूत की छाया में पसरा विशाल सुअर दिखायी दे गया। बकरा मुझे नहीं उसी को गालियाँ दे रहा था। मैंने रायफल की नाल सुअर की ओर मोड़ दी और गोली चलने के बाद न जाने कहाँ से जंगली सुअरों का पूरा का पूरा झुण्ड प्रकट हुआ और भाग पड़ा, और कटक पर मुझे न दिखायी देती सारी घूमन्तू बकरियाँ चौंककर माइखे के सहारे-सहारे रूसी सीमा की ओर तेजी से दौड़ पड़ीं। उस ओर टीलों पर धब्बों जैसी छोटी-छोटी जोतों के पास दो चीनी झोपड़ियाँ—फ़ान्ज़ें नज़र आ रही थीं। चीनियों ने खुशी-खुशी मेरा सुअर ले लिया, मुझे खाना खिलाया और मांस के बदले मुझे चावल, चौलाई और खाने-पीने का कुछ और सामान दिया। जब मुझे पता चल गया कि टैगा प्रदेश में कारतूस मुद्रा का ही काम देते हैं मैं खूब मज़े से रहने लगा, काफ़ी जल्दी मैंने रूसी सीमा को पार किया, किसी पवर्त श्रृंखला पर चढ़ा और मुझे अपने सामने नीला महासागर दिखायी पड़ा। जी हाँ, बस इसी के लिए, ऊँचाई से नीले महासागर को देखने के लिए उन अनेक कठिन रातों का कोई दुख नहीं, जब किसी जन्तु की तरह चौकन्ना होकर सोना पड़ा, और वह सब खाने का भी जो कुछ बन्दूक की गोली ने दिलवाया। बड़ी देर तक मैं ऊँचाई से इस दृश्य का आनन्द लेता रहा, मैं अपने को इस दुनिया में सचमुच ही सबसे सौभाग्यशाली व्यक्ति समझ रहा था। फिर मुँह में दो कौर डालकर मैं पथरीली चोटी से देवदार के वन में उतरने लगा और देवदार के वन से धीरे-धीरे मंचूरिया की तटवर्ती प्रकृति के चौड़ी-चौड़ी पत्तियों वाले वन में पहुँच गया। खासकर

* घूमन्तू—पक्षियों की तरह जन्तु भी प्रव्राजी होते हैं, विशेषकर सुदूर पूर्व में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।—लेखक

मखमली पेड़ मुझे फौरन भा गया अपनी सादगी की वजह से, देखने में वह लगभग हमारे एश वृक्ष जैसा ही लगता है पर वह एश नहीं, मखमल है—जो कहलाता है कार्क वृक्ष। इनमें से एक पेड़ की सलेटी छाल पर टूटी-फूटी रूसी में समय के कारण काले पड़ चुके ये शब्द खुदे हुए थे : "तुम्हारा चलना मना है, गला चिक हो जायेगा!" करता क्या? एक बार फिर से ये शब्द पढ़कर मैं कुछ देर सोच में डूबा रहा और टैगा की संहिता का पालन करते हुए उल्टा मुड़ा कोई दूसरी पगडण्डी खोजने के लिए। इस बीच पेड़ के पीछे से छिपकर एक आदमी मुझ पर निगाह रखे हुए था और जब मैं वर्जना पढ़कर उल्टा मुड़ा, वह समझ गया कि मैं खतरनाक आदमी नहीं हूँ। पेड़ की ओट से निकलकर वह सिर हिलाने लगा कि मैं उससे डरूँ नहीं।

"चलो, चलो!" उसने मुझसे कहा।

उसने बड़ी मुश्किल से टूटी-फूटी रूसी में मुझे बताया। तीन साल पहले चीनी शिकारियों ने इस घाटी पर कब्ज़ा कर लिया था : यहाँ वे बारहसिंगों और चीतलों का शिकार करते थे और यह उन्होंने डराने के लिए लिख दिया ताकि दूसरे यहाँ आकर जन्तुओं को न छेड़ें।

"चलो-चलो, घूमो-घूमो!" चीनी मुस्कुराकर बोला, "कुछ नहीं होगा।"

उसकी इसी मुस्कान ने मुझे कैद कर लिया और साथ ही कुछ सकते में भी डाल दिया। शुरू में चीनी मुझे बूढ़ा ही नहीं बल्कि बेहद जर्जर लगा। उसका चेहरा छोटी-छोटी झुर्रियों से पटा था, चमड़ी का रंग मिट्टी जैसा धूसर था, उसकी मुश्किल से दिखायी देती आँखें इस पुराने पेड़ की छाल जैसी सिकुड़ी चमड़ी में छिपी थी। पर जब वह मुस्कराया तो उसकी सुन्दर काली-काली मानवीय आँखें चमक उठीं। चमड़ी तन गयी, होंठ खिल उठे, श्वेत दंतावली भी चमक उठी और उसके चेहरे पर तरुणाई की ताज़गी और बालाकों के भोलेपन का भाव छा गया। ऐसा होता है कि कुछ वनस्पतियाँ खराब मौसम या रात के समय धूसर पत्तियों में दुबक जाती हैं और जब उचित मौसम होता है तो पूरी छटा के साथ खिल उठती हैं। उसने मुझे किसी विशेष, सौहार्द भरी दृष्टि से देखा।

"थोड़ा-थोड़ा खाना है," उसने कहा और मुझे खड्ड में सोते के पास, बड़े-बड़े चौड़े पत्तों वाले मंचूरियाई अखरोट की छाया में बनी अपनी छोटी-सी फ़ान्ज़ा में लिवा ले गया।

फ़ान्ज़ा पुरानी थी, सरकण्डों का छप्पर जाल से ढका था ताकि तूफ़ान न उड़ा ले जाये। खिड़कियों और दरवाज़े में काँच की जगह कागज चिपका था। आसपास कोई सागबाड़ी नहीं थी पर फ़ान्ज़ा के पास जिन्सेंग की जड़ खोदने के लिए आवश्यक बेलचे, फावड़े, खुरपियाँ, छाल की टोकरियाँ और छड़ियाँ आदि विभिन्न औज़ार रखे थे। फ़ान्ज़ा के सामने सोता दिखायी नहीं देता था, वह कहीं ज़मीन के अन्दर-अन्दर, पत्थरों के ढेर के नीचे से बहता था, और इतने पास कि फ़ान्ज़ा में दरवाज़ा खोलकर बैठे-बैठे उसके

अनवरत गीत को सुना जा सकता था जो कभी-कभी हँसमुख परन्तु बहुत दबे-दबे से वार्तालाप जैसा लगता। जब मैंने पहली बार इस वार्तालाप को कान लगाकर सुना तो प्रतीत हुआ मानो वास्तव में "परलोक" होता है और अब वहाँ सब बिछड़े, एक-दूसरे से प्यार करने वाले लोगों का मिलन हुआ और वे हफ्तों, महीनों दिन-रात बातें कर रहे हैं पर उनका जी नहीं भर रहा...मेरी किस्मत में बहुत सालों तक इस फ़ान्ज़ा में रहना बदा था और इन सभी लम्बे वर्षों के दौरान मैं इस वार्तालाप का उस तरह आदी न हो सका, जैसाकि मैं बाद में टिड्डों, झींगुरों के संगीत का हो गया था, मैं उन पर ध्यान ही न देता था : इन संगीतकारों का संगीत इतना नीरस है कि बहुत ही समय बाद कान उसे सुनना बन्द कर देते हैं–लगता है कि वे शरीर में रक्त संचार की ओर से ध्यान बँटाने और निर्जन स्थान की नीरवता को पूर्णता प्रदान करने के लिए ही बनाये गये हैं जो उनके बिना कभी भी न हो सकती थी; पर मैं भूमिगत वार्तालाप को कभी भी न भूल सका क्योंकि वह हमेशा भिन्न होता और वहाँ से आने वाली चिल्लाहटें इतनी अप्रत्याशित और अद्वितीय होतीं।

जीवन की जड़ के खोजी ने बिना यह पूछे कि मैं कहाँ से और क्यों यहाँ आया हूँ मुझे आश्रय और खाना दिया। और जब मैंने भरपेट खाकर उसकी ओर प्रेम से देखा और उसने एक परिचित, लगभग सगे आदमी की तरह मुस्कान से इसका उत्तर दिया, तभी वह पश्चिम की ओर इशारा करके बोला :

"अशिर्या से?"

मैं उसे फौरन समझ गया और उत्तर में बोला :

"हाँ, मैं रशिया से हूँ।"

"कहाँ है तुम्हारा अर्शिया?" उसने पूछा।

"मेरा अर्शिया," मैंने कहा, "मास्को है। और तुम्हारा कहाँ है?"

उसने उत्तर दिया :

"मेरा अर्शिया शंघाई है।"

निःसन्देह, हमारी भाषा में 'मेरा और तुम्हारा' बिल्कुल संयोग से ही गुंथ गये थे, मानो उस चीनी और मुझ रूसी की आम मातृभूमि अर्शिया हो, पर बहुत वर्षों बाद यहीं, सोते के पास, उसके वार्तालाप के साथ, मैं इस अर्शिया को समझने लगा और इसे मात्र संयोग मानने लगा कि कभी लूवेन का अर्शिया शंघाई में था और मेरा अर्शिया मास्को में...

फ़ान्ज़ा से कोई बीस क़दम की दूरी पर ही बेहद दुर्गम जंगल शुरू होता था, बलूतों और मखमली पेड़ों, छोटी पत्तियों वाले मैपिल, चमखरक और सदाबहार वृक्षों को, अंगूर आदि की बेलों, छाती तक ऊँची नागदौन की कँटीली झाड़ियों और उसी बकायन ने खूब कसकर जकड़ रखा था जो हमारे यहाँ सिर्फ बागों में होती है। लूवेन ने जो अक्सर

यहाँ से पानी लाने जाता था, पगडण्डी काट दी थी और वह मुश्किल से दिखती पगडण्डी घने झुरमुट से बचती हुई शीघ्र ही कगार की ओर पहुँचा देती थी और यहाँ वह सारा वार्तालाप फूट पड़ता जो फ़ान्ज़ा के पास परलोक से आता लगता : सोता चट्टान के नीचे से मृत्युलोक में प्रवेश करता और फौरन शिलाखण्ड से टकराकर इन्द्रधनुषी कणों में बदलकर नीचे गिरता। पर चौड़ी, खड़ी चट्टान भी थोड़ी-थोड़ी रिसती थी, वह हमेशा गीली रहती, हमेशा चमकती रहती और उसकी असंख्य धाराएँ नीचे मिलकर चंचल नाले में बदल जातीं। मैं कभी भी इस परम आनन्द की अनुभूति को न भूल सकूँगा! इस नाले में स्नान मेरी दुरूह यात्रा का कितना बड़ा पुरस्कार था! वहाँ पर्वतमाला के पीछे डांस ने मेरा जीना दूभर कर रखा था और यहाँ, सागर के निकट न मच्छर थे, न गोमक्षिकाएँ थीं, न भुनगे। उस स्थान से कुछ नीचे जहाँ मैं नहा रहा था, पत्थरों के बीच भँवर था। वहाँ मैंने अपने कपड़े धुलने के लिए डाल दिये और खुद कुण्ड में बैठ गया, ऊपर से मेरे सिर पर पानी के छींटे बरस रहे थे जैसे स्नानगृह के फव्वारे से। गिरते पानी का यह शोर जीव-जन्तुओं के लिए खौफ़नाक आदमी की हर ध्वनि को उनसे छिपा रहा था और वे पानी पीने के लिए बेधड़क नाले के पास आ रहे थे। और पहली ही बार में मैं इस सागरवर्ती टैगा वन में कुछ देख सका। चौड़ी-चौड़ी पत्तियों वाले पेड़ों के साये में उगने वाली घास पर बयालीसवें अक्षांश की चटकीली धूप के चकत्ते बिखरे थे। ग्रीष्म में जो यहाँ सागरवर्ती क्षेत्र में कोहरे का मौसम होता है विरले ही सूर्य अपनी पूर्ण गरिमा और शक्ति के साथ चमकता है और उसने ऐसे सौभाग्य से मेरा उस दिन अभिनन्दन किया। धूप के चकत्तों के बीच मैं पशुओं की लाल खालों पर ठीक ऐसे ही धब्बों को कतई न देख पाता अगर वे हिलडुल न रहे होते : शायद यहीं कहीं पास में लेटे रहने के बाद चीतल मृग उठकर धूप के चकत्तों के बीच अपनी चित्तियों को झिलमिलाते पानी पीने के लिए चल पड़े। पूरब में जाने वाले किस व्यक्ति ने सागरवर्ती टैगा के इस दुर्लभतम जन्तु के बारे में न सुना होगा, जिसके सींगों में, जब वे नये और खून से भरे होते हैं मानो ऐसी उपचारक शक्ति होती है जो लोगों को जवानी और जीवन का आनन्द लौटा देती है? चीनियों के यहाँ इतने बहुमूल्य इन मृगश्रृंगों के बारे में कितनी ही किवदन्तियाँ सुन चुका हूँ मैं कि सब किस्से-कहानियों पर विश्वास-सा होने लगता है। और अब ये ही सुप्रसिद्ध मृगश्रृंग पानी के बिल्कुल पास मंचूरियाई अखरोट के दो बड़े-बड़े पत्तों के बीच से बाहर निकले, ये मखमली, लाल-खुबानी के रंग के सींग बड़ी-बड़ी सुन्दर सुरमई आँखोंवाले जीते-जागते सिर पर टके थे। 'सुरमई नयन' पानी पर झुका ही था कि उसके पास बिना सींगोंवाला एक सिर दिखायी पड़ा जिसकी आँखें और भी सुन्दर थीं पर सुरमई नहीं–काली चमकीली। इस हिरणी के साथ पतली सींकों जैसे सींगोंवाला तरुण हिरण और बिल्कुल छोटा-सा नन्हा हिरनौटा था, पर उसके पर भी वैसी ही चित्तियाँ थीं जैसी बड़ों के। यह नन्हा-मुन्ना

सीधा नाले में जा खड़ा हुआ अपने छोटे-से खुरों पर। हिरनौटा धीरे-धीरे एक पत्थर से दूसरे की ओर आगे बढ़ता हुआ मेरे और अपनी माँ के बीच आ गया और जब माँ ने उसे देखने के लिए नज़र उठायी तो उसकी नज़र पानी की बौछार में बुत बनकर बैठे मुझ ही पर पड़ी। उसको मानो लकवा मार गया, जड़ होकर वह मुझे ताकती हुई सोचने लगी कि मैं पत्थर हूँ या हिल सकता हूँ। उसकी थूथनी काली थी, किसी पशु के हिसाब से बेहद छोटी, पर कान बहुत बड़े थे, इतने सख़्त, इतने चौकस और उनमें से एक में छेद था—आर-पार चमकता। और कुछ मैं नहीं देख पाया क्योंकि उसकी सुन्दर, काली चमकीली आँखों ने मेरा सारा ध्यान अपनी ही ओर खींच लिया था—और आँखें क्या वे तो फूल थे फूल! मैं फौरन समझ गया कि चीनी लोग इस बहुमूल्य हिरण को क्यों 'हुआ-लू' अर्थात पुष्प-मृग कहते हैं। और उस व्यक्ति की कल्पना करना बड़ा कठिन था जिसने ऐसे फूल को देखकर उसकी ओर बन्दूक तानी और अपनी भयंकर गोली छोड़ दी : गोली का छेद अलग ही चमक रहा था। कहना कठिन है कि हमारी नज़रें कितनी देर तक मिली रहीं—शायद बड़ी देर तक! मैं बड़ी कठिनाई से साँस ले पा रहा था, मेरे लिए जड़ बैठे रहना अधिकाधिक दूभर होता जा रहा था और शायद इस बेचैनी के कारण मेरी पुतलियों पर बिम्ब हिल रहे थे। 'हुआ-लू' ने यह देख लिया, ध ीरे-धीरे उसने अपनी अगली बेहद पतली, छोटे-से नुकीले खुरवाली टाँग उठाकर मोड़ी और अचानक झटके से उसे सीधा करके पटक दिया। तब 'सुरमई नयन' से अपना सिर उठाया और वह भी मेरी ओर देखने लगा, ऐसे अन्दाज में मानो वह अपने स्वभाव से ही जीवन की छोटी-छोटी, घिनौनी बातों की ओर ध्यान देने का आदी न होने के बावजूद बड़ी ऊँचाई से किसी तुच्छ, अप्रीतिकर चीज़ को देखना चाहता हो। वह मृगराज की गरिमा के साथ मेरी ओर देख रहा था, बस यही कसर थी कि वह ओहदेदारों की तरह यह नहीं कह रहा था : "हम आपके लिये सब कुछ करने को तैयार हैं पर जल्दी से बताओ कि माजरा क्या है, हम खुद थोड़े ही पता लगायेंगे!" जैसे कि वे किसी मामूली प्रार्थी से कहते हैं। उस समय, जब 'हुआ-लू' ने खुर पटका और 'सुरमई नयन' ने असमंजस के साथ अपना छोटे सींगोंवाला भव्य सिर उठाया, वहाँ, उनसे कुछ आगे बड़ी खलबली-सी हुई और अन्य सिरों के बीच एक बड़ा आगे निकला और पीठ पर काली पेटी जैसी धारीवाला पूरा का पूरा हिरण दिखायी पड़ा। दूर से भी जाहिर था कि 'कलपीठू' नेक नज़र से नहीं देख रहा था, उसकी काली और कलुषित आँखों में झलकता इरादा भी नेक न लगता था। 'हुआ-लू' के संकेत पर 'कलपीठू' के साथ के ये सब हिरण ही मुझे जड़ होकर नहीं निहार रहे थे बल्कि नाले में खड़ा हिरनौटा भी बड़ों की नकल करता ठीक उन्हीं की तरह बुत बनने की कोशिश कर रहा था। धीरे-धीरे उसे ऊब होने लगी, इसके अलावा अन्य हिरणों की तरह निःसन्देह उसे भी किलनियाँ काटे जा रही थीं, उससे न रहा गया और उसने टाँग उठाकर बदन खुजलाया। तब मुझसे भी

न रहा गया और मुस्करा दिया, बस तभी 'हुआ-लू' सब समझ गयी और उसने इतनी दृढ़ता और ज़ोर के साथ पैर पटका कि पत्थर टूटकर छींटे उड़ाता पानी में जा गिरा। फिर उसने अचानक अपने काले होंठ हिलाये और बिल्कुल आदमियों की तरह सीटी बजायी और जब वह मुड़कर दौड़ी तो उसने अपनी दुम पर बने खास, सफ़ेद रूमाल को फुला दिया ताकि उसके पीछेवाले हिरण को पता चलता रहे कि वह झाड़ियों में किस ओर भागेगी। अपनी माँ के पीछे हिरनौटा और 'सुरमई नयन', 'कलपीठू' तथा अन्य हिरण दौड़ पड़े। जब सब भाग चुके थे एक सलोनी हिरणी नाले की धारा के बीचोंबीच दौड़ी-दौड़ी आयी और खड़ी हो गयी, मानो वह अपने सलोने मुखड़े से पूछ रही थी : "क्या हो गया, वे कहाँ भाग गये?" अचानक वह विपरीत दिशा में कुलांचें भरती नाले के पार चली गयी, शीघ्र ही वह खड्ड के आधे ढाल पर चढ़ चुकी थी, उसने ऊपर से मेरी ओर देखा, फिर चौकड़ी भरने लगी, ढाल पर चढ़कर फिर उसने मेरी ओर देखा और काली चट्टान और नीले आकाश की सीमा के पीछे अगोचर हो गयी।

2

लूवेन ने सागरवर्ती प्रदेश के प्रचण्ड तूफ़ानों से अपनी फ़ान्ज़ा को गहरे खड्ड में छिपा रखा था, पर अगर खड्ड की ढाल पर कोई सौ मीटर चढ़ा जाये तो वहाँ सागर, प्रशान्त महासागर दिखायी पड़ेगा। हमारा चिकी-चिकी खड्ड उस स्थान के बहुत पास था, जहाँ हिरणों से मेरी भेंट हुई, वह चौड़े ज़ुसुख़े कन्दर से जुड़ा था, यहाँ जलधारा काफ़ी शान्त थी, कन्दर धीरे-धीरे घाटी में बदल जाता और पहाड़ी खड्डों और कन्दरों में अपनी यातना भरी दौड़ पूरी करके प्रशान्त और भव्य नदी महासागर से जा मिलती।

यहाँ मेरे आने के अगले ही दिन ज़ुसुख़े की खाड़ी में प्रवासियों को लेकर स्टीमर आया और जब तक वे यहाँ बसने का बन्दोबस्त कर रहे थे, वह दो हफ़्ते तक लंगर डाले खड़ा रहा। और इन्हीं दो सप्ताहों में मेरे जीवन की वही सबसे बड़ी घटना हुई जिसके बारे में ही मैं बताऊँगा। वह घाटी जहाँ ज़ुसुख़े दौड़ती है पूरी फूलों से पटी है, यहीं मैंने हर फूल की रामकहानी की मर्मभेदी सादगी को समझना सीखा : ज़ुसुख़े का हर फूल अपने आप में एक नन्हा सूर्य है, इसी नाते वह धरती से सूर्य की किरण के मिलन की पूरी गाथा बखान करता है। काश, मैं भी ज़ुसुख़े के इन भोले-भाले फूलों की बखान करता है। काश, मैं भी ज़ुसुख़े के इन भोले-भाले फूलों की तरह ही अपनी कहानी सुना पाता! वहाँ आइरिस की फीके आसमानी से लेकर, समझो, काले रंग तक के फूल, लगभग सभी शेडों के आर्किड, लिली के लाल, नारंगी, पीले फूल थे और उनके

बीच सर्वत्र नन्हे चटक लाल तारों की तरह कार्नेशन के फूल बिखरे थे। इन घाटियों में, सादे और सुन्दर फूलों के बीच सर्वत्र उड़ते फूलों जैसी तितलियाँ उड़तीं, काली और लाल चित्तियोंवाली ओपोलो, इन्द्रधनुषी आभावाली ईंट-सी लाल अर्टिका और बड़ी-बड़ी गहरी नीली अद्भुत अबाबील पुछी तितलियाँ। उनमें से कुछ पानी पर बैठकर तैर सकती थीं–मैंने यहीं पहली बार ऐसी तितलियाँ देखी थीं, और फिर वे फुर्र से उड़कर फूलों के सागर के ऊपर मण्डराने लगतीं। फूलों पर मधुमक्खियाँ और ततैये भिनभिनाते, हवा में काले, नारंगी और सफ़ेद पेटोंवाले झबरीले भौंरे ज़ोर-ज़ोर से गुंजार करते उड़ते। कभी-कभी ऐसा होता था कि मैं फूल के अन्दर झाँकता और वहाँ मुझे कुछ ऐसा कीट दिखता जो मैंने कभी देखा नहीं और उसका नाम भी आज तक मुझे पता नहीं–यह न भौंरा लगता, न मधुमक्खी, न ततैया। और ज़मीन पर फूलों के बीच तरह-तरह की इल्लियाँ रेंगतीं, मौका पड़ने पर फुर्रसे नाक की सीध में उड़ने को तैयार अवशिष्ट भृंग दुबके बैठे रहते। घाटी के इन सभी फूलों और जीवधारियों के बीच मैं ही अकेला था जो सूरज की ओर न सीधा देख सकता था और न उनकी तरह साफ़गोई से अपनी बात कह सकता था, कम से कम मुझे तो यही लगता था। मैं सूरज से आँखें चार करने से कतराते हुए उसके बारे में बता सकता हूँ। मैं मानव हूँ, सूरज को देखकर अन्धा हो जाता हूँ और मैं उसके द्वारा आलोकित सभी विविध वस्तुओं की ओर सगों की तरह अपना ध्यान मोड़कर और उनसे प्रतिक्षिप्त किरणों को समेटकर ही उसके बारे में बता सकता हूँ।

हमारी फ़ान्ज़ा के ऊपरवाली चट्टान से मुझे स्टीमर दिखायी पड़ा और मुझे लोगों को देखने की इच्छा हुई। जब तक मैं उस स्थान पर उतरा जहाँ हमारा चिकी-चिकी नाला जुसुखे नदी में गिरता था, बहुत गर्मी हो गयी थी, मैं थक गया था और मुझे आराम करने की इच्छा हो रही थी। यहाँ नाले और जुसुखे नदी के संगम के पास अंगूर की बेलों ने मंचूरियाई अखरोट के छोटे-छोटे पेड़ों को ऐसा जकड़ रखा था कि उनमें से कुछ गहरे हरे, सूर्य की किरणों के लिए अभेद्य तम्बू बन गये थे। मुझे ऐसे किसी तम्बू में घुसने और वहाँ अगर आरामदेह ठण्डक हुई तो कुछ देर बैठकर दम लेने की तीव्र इच्छा हुई। ज़मीन तक लटकी अंगूर की काफ़ी मोटी बेलों के जाल को चीरकर उसमें घुसना इतना आसान न था। पर बेलों को हटाकर मुझे लता-बेलों से जकड़े, बाहर से न दिखते पेड़ के तने के इर्द-गिर्द काफ़ी खुली, सूखी जगह दिखायी दी। और मैं ठण्डक में पेड़ के धूसर तने से पीठ टिकाकर एक पत्थर पर बैठ गया। निःसन्देह यह तम्बू सूर्य की किरणों के लिए इतना अभेद्य न था जैसाकि बाहर से देखने पर लगता था। यहाँ की हरियाली मानो अपनी ही आभा से दीप्तिमान थी और चारों ओर धूप की चित्तियाँ बिखरी थीं। वातावरण में पूर्ण नीरवता व्याप्त थी, इसलिए कुछ देर बाद मुझे किसी हरकत को, धूप की चित्तियों की झिलमिल को देखकर बड़ी हैरानी हुई, मानो बाहर से

कोई कभी सूर्य की किरणों को रोकता तो कभी फिर से आने देता। सावधानी के साथ मैंने अंगूर की लताओं को हटाया और मुझे कुछ ही कदमों की दूरी पर अपनी चित्तियों से ढकी हिरणी दिखायी दी। सौभाग्य से हवा का रुख मेरी ओर था और इतनी दूरी पर तो मैं भी हिरण की गंध महसूस कर सकता था। पर क्या होता अगर हवा का रुख उसकी ओर पलट जाता! मुझे यह डर लगने लगा कि मेरी किसी अनभिप्रेत सरसराहट से उसे भनक पड़ जायेगी। मैं अपनी साँस लगभग रोके हुए था और वह पास आती जा रही थी, सभी सतर्क जन्तुओं की तरह–एक कदम रखती और रुक जाती, अपने अत्यन्त लम्बे और चौकस कानों को उस ओर मोड़ती जिधर से उसे हवा में कोई भनक महसूस होती। एक बार तो मैं यही सोच बैठा कि सब स्वाहा हो गया : उसने कान सीधे मेरी ओर मोड़ लिये थे, तभी मैंने बायें कान में गोली से बिंधे छेद को देखा और बड़े हर्ष के साथ, मानो किसी मित्र से भेंट हुई हो, मैंने उसी हिरणी को पहचान लिया जिसने पहाड़ी नाले के तट पर खुर पटककर मुझे धमकाया था। तब की तरह अब भी उसने असमंजस में या सोच में पड़कर अगली टाँग उठायी और ऐसे ही खड़ी रह गयी और अगर मेरी साँस अंगूर की एक भी पत्ती से टकरा जाती तो वह खुर पटककर गायब हो जाती। पर मैं जड़ हो गया और उसने धीरे-धीरे खुर ज़मीन पर रखा, मेरी ओर एक कदम बढ़ी, फिर और एक। मैं उसकी आँखों को एकटक देख रहा था और उनके सौन्दर्य से चकित हो रहा था, कभी मैं किसी नारी के चेहरे पर ऐसी आँखों की कल्पना करता, तो कभी जुसुखे के ढेरों फूलों के बीच अचानक दिखायी पड़े किसी डण्ठल पर लगे अद्भुत फूलों के रूप में। तब मैं एक बार फिर पुष्प-मृग नाम की आवश्यकता को समझ गया और यह सोचकर मुझे हर्ष हो रहा था कि कई हज़ार वर्ष पूर्व किसी अज्ञात, पीले चेहरे वाले कवि ने इन आँखों को देख उन्हें पुष्प समझा और अब मैं, गोरे चेहरे वाला भी, उन्हें पुष्प ही समझता हूँ; मुझे इस पर भी हर्ष हो रहा था कि मैं अकेला नहीं हूँ, कि दुनिया में निर्विवाद वस्तुएँ भी हैं। मैं यह भी समझ गया कि चीनी क्यों इसी हिरण के सींगों को मूल्यवान मानते हैं न कि उजड्ड काकड़ या पाढ़े के सींगों को। क्या दुनिया में लाभदायक और उपचारक चीज़ों की कोई कमी है पर ऐसा दुनिया में बहुत कम ही होता है कि चीज़ लाभदायक भी हो और सौन्दर्य भी उसका पूर्ण हो। इस बीच 'हुआ-लू' मेरे तम्बू की ओर कुछ कदम बढ़कर पिछली टाँगों पर खड़ी हो गयी और अगली मेरे सिर के ऊपर ऊँचाई पर टिका दी, अंगूर की लताओं के जाल में से नन्हे-नन्हे सुघड़ खुर नीचे मेरे पास लटके थे। मैं उसे अंगूर के रसीले पत्ते खाते सुन रहा था जो हिरणों का प्रिय खाद्य है, हम आदमियों के लिए भी वे स्वाद में काफ़ी रुचिकर होते हैं। उसके बड़े थनों को देखकर जिनसे दूध टपक रहा था मुझे उसके हिरनौटे की याद आ गयी पर सहज ही मैं झुककर किसी छिद्र में से झाँकने का साहस न कर सका : ज़रूर ही वह यहीं कहीं आसपास होना चाहिए था। एक शिकारी

के नाते, अर्थात एक पशु के नाते मुझे उचककर झट से हिरण के खुर पकड़ लेने का बड़ा प्रलोभन हो रहा था। जी हाँ, मैं ताकतवर हूँ और महसूस करता हूँ कि अगर मैं दोनों हाथों से टखनों को कसकर पकड़ लेता तो मैं उसे पछाड़कर पेटी से बाँध सकता था। कोई भी शिकारी पशु को पकड़कर अपना बनाने की मेरी लगभग अनियंत्रित इच्छा को समझ सकता है। पर मुझमें एक दूसरा आदमी भी बैठा था जिसे इसके विपरीत सुष्ठुता के क्षण को पकड़ने की आवश्यकता नहीं, उल्टे, उसे उस क्षण को अक्षुण्ण रखकर सदा के लिए मन में सँजोने की इच्छा होती है। निःसन्देह हम सब आदमी ही हैं और हम सब में थोड़ा बहुत यह होता ही है, आखिर सबसे उत्साही शिकारी भी गोली लगने से दम तोड़ते जीव को देखकर कठिनाई से अपने कमज़ोर दिल को कड़ा कर पाता है और सबसे भावुक कवि फूल को भी, हिरण को भी और पक्षी को भी पाने की इच्छा रखता है। शिकारी के रूप में मैं अपने को अच्छी तरह जानता था पर मैंने कभी सोचा भी नहीं, न जाना कि मुझमें कोई दूसरा आदमी बैठा है, कि सौन्दर्य या क्या कहें उसे, एक हिरण की तरह स्वयं मेरे ही, एक शिकारी के हाथ-पाँव बाँध सकता हैं। मुझमें दो व्यक्तियों का द्वन्द्व चल रहा था। एक कह रहा था : "मौका हाथ से निकल जायेगा, फिर कभी न आयेगा और तू जिन्दगी भर पछताता रहेगा। पकड़ ले जल्दी से और दुनिया के सबसे सुन्दर जीव की मादा—'हुआ-लू' तेरे हाथ आ जायेगी।" दूसरी आवाज़ कह रही थी : "चुप बैठ! सुष्ठुता के क्षण को हाथों से छुए बिना ही अक्षुण्ण रखा जा सकता है।" यह तो उसी कहानी वाली बात थी जब शिकारी न हंसनी का निशाना साधा और अचानक हंसनी ने उससे तीर न चलाने, कुछ रुकने का अनुरोध किया। बाद में ही पता चलेगा कि यह हंसनी के रूप में राजकुमारी थी, शिकारी ने तीर नही चलाया, और बाद में उसके समक्ष जीती-जागती रूपसी राजकुमारी प्रकट हुई, अन्यथा उसके हाथ मरी हंसनी ही आती। इसी तरह मैं भी साँस रोके अपने से संघर्ष कर रहा था। पर इसके लिए मुझे क्या नहीं करना पड़ रहा था, कितना मूल्य चुकाना पड़ रहा था मुझे इसके लिए! अपने को वश में करते-करते मुझमें शिकार पर टूटने को तत्पर कुत्ते की तरह कँपकँपी दौड़ने लगी और शायद मेरी यह पाशविक कँपकँपी उसमें आशंका के रूप में संचारित हो गयी। 'हुआ-लू' ने धीरे से अपने खुर अंगूर की लताओं के जाल से बाहर निकाले, अपनी चारों पतली-पतली टाँगों पर खड़ी हुई, झुरमुट के अन्धियारे में वह विशेष ध्यान के साथ मेरी आँखों में झाँकी, फिर मुड़कर चल पड़ी, अचानक रुककर उसने पीछे मुड़कर देखा; न जाने कहाँ से हिरनौटा दौड़ा-दौड़ा उसके पास आया। उसके साथ वह काफ़ी देर तक सीधे मेरी आँखों में झाँकती रही और फिर झाड़ियों में ओझल हो गयी।

3

हर वसन्त में और गर्मियों व पतझड़ की हर बाढ़ के साथ नदी पहाड़ी टैगा से सागर तट पर ढेरों गिरे और तूफ़ानों से उखड़े वन दानवों—पापलरों, देवदारों, चमखरकों, चिरोबेलों को घसीटकर लाती हैं और उन्हें बालू से ढक देती है, इतनी अधिक बालू से, सालों तक यही क्रम चलता रहता है, कि सागर को पीछे हटना पड़ जाता है और वहाँ खाड़ी बन जाती है।

जल और थल की सीधी सीमा रेखा को अर्धवृत्ताकार बनाने के लिए सागर और जुसुखे नदी को आखिर कितनी सदियों तक काम करना पड़ा होगा? खाड़ी के बीच नन्हे-से पथरीले टापू पर तब तक आखिर कितने समुद्री जीव विचर चुके थे जब अन्ततः स्टीमर के भोंपू ने समुद्री वीरानगी की निःस्तब्धता को भंग कर दिया और सब सीलें डर के मारे टापू से पानी में कूद गयीं?

सागर के बिल्कुल पास की रेत पर किसी अश्मीभूत दैत्य की पीठ की तरह बालू से अधढका भीमकाय पेड़ दिखायी दे रहा था।

उसकी फुनगी पर बची दो विशाल काली टेढ़ी-मेढ़ी डालें नीले आकाश की पृष्ठभूमि में क्षितिज तक फैली लगती थीं। इस पेड़ की छोटी-छोटी शाखाओं पर सफ़ेद, गोल-गोल सुन्दर पिटारियाँ-सी लटकी थीं—ये उन जलसाहियों के कंकाल थे जिन्हें तूफ़ानों ने तट पर ला पटका था। मेरी ओर पीठ किये बैठी कोई स्त्री अपनी झोली में समुद्र के इन उपहारों को भर रही थी। शायद मुझ पर अभी भी अंगूर की बेलों से जकड़े पेड़ के पास देखे मोहक जन्तु का जबर्दस्त जादू छाया हुआ था, इस अपरिचित स्त्री में कुछ ऐसी चीज़ थी जो मुझे 'हुआ-लू' की याद दिलाती थी, और मुझे पक्का विश्वास था कि बस अभी, जब वह मेरी ओर मुड़ेगी, मैं एक मानव के चेहरे पर वे ही सुन्दर आँखें देखूँगा। मैं आज तक यह नहीं समझ पाता कि इसका स्रोत क्या था, क्यों ऐसा प्रतीत होता था, आख़िर नाप-तौलकर उसकी छवि उतारी जाती तो बिल्कुल ही भिन्न होती, पर मुझे तो यही लग रहा था कि वह जैसे ही मुडेगी, पुष्प-मृग 'हुआ-लू' ही नारी के रूप में मेरे समक्ष साक्षात प्रकट होगी। और फिर, मानो मेरे पूर्वाभास के प्रत्युत्तर में हंसनी राजकुमारी की कहानी की तरह रूपान्तर शुरू हो गया। आँखें उसकी हूबहू 'हुआ-लू' जैसी थीं कि हिरणी के बाकी सभी अंग-प्रत्यंग—खाल, काले होंठ, चौकस कान—अगोचर रूप से मानव के नाक-नक्श में ढल रहे थे, साथ ही उनमें मानो सत्य और सौन्दर्य की अभिन्नता की दैवी पुष्टि के रूप में हिरणी जैसा ही जादुई संयोग था। वह मुझे आशंका और आश्चर्य के साथ घूर रही थी, लगता था कि वह, बस अभी, हिरणी की तरह पाँव पटककर मुझे धमकायेगी और भाग जायेगी। न जाने कितने भाव उमड़ते हैं मेरे मन में, कितने ही विचार कोहरे की तरह तैरते जाते हैं, उन्हीं में मानो अस्पष्ट और अबोधगम्य

संसार का कोई उपादान निहित हो, पर इसके लिए पूर्ण रूप से सही और सटीक शब्द मैं आज तक न खोज पाया, और न ही मुझे ज्ञात है, कभी मेरी मुक्ति का क्षण भी आयेगा। हाँ, मैं यही कहूँगा कि उन्मुक्तता शब्द ही उस विशेष मनोदशा का यथोचित नाम होगा जब अद्भुत जन्तु की सुष्ठुता को समझ लेने के उपरान्त मुझे अचानक उसके अनवरत सिलसिले को एक मानव में जारी रखने की सम्भावना मिली। ऐसी अनुभूति हो रही थी मानो मैं तंग खड्ड से निकलकर नीले महासागर में अपनी अनन्त यात्रा पर जाती जुसुखे नदी की फूलों से पटी घाटी में पहुँच गया हूँ।

और सबसे बड़ी बात यह थी कि वहाँ भी आदमी दो थे। जब 'हुआ-लू' ने अंगूर की बेलों के जाल से मेरे पास अपने खुर ठूँसे थे, एक शिकारी था जिसका प्रयोग अपने बलिष्ठ हाथों से उसकी टाँगों को टखनों पर कसकर पकड़ना था, और दूसरा—अभी तक मेरे लिए अज्ञात व्यक्ति जो अपने विचलित मन में चिरकाल तक उस क्षण को सँजो रहा था। हाँ, तो अब मैं बेहिचक कह सकता हूँ, ठीक उसी रूप में, ठीक उसी, सहमे-सहमे उल्लास और अदम्य आकुलता से परिपूर्ण, मुझे अज्ञात व्यक्ति के रूप में, मैं उसके पास गया और वह फौरन मुझे समझ गयी। वह मुझे समझे और प्रत्युत्तर दिये बिना नहीं रह सकती थी। अगर ऐसा जीवन में एक ही बार न होता, बल्कि सदा हममें रहता तो हम सब सदा और सर्वत्र प्रत्येक पुष्प, प्रत्येक हंसनी, प्रत्येक हिरणी को राजकुमारी में बदल देते और उसी तरह रहते जैसे मैं अपनी इस कायाकल्पित राजकुमारी के साथ जुसुखे की फूलों की वादी में, पहाड़ों में, नदियों और नालों के तटों पर रहता था। हम दोनों धुँधली पहाड़ी पर गये जो कभी पहले ज्वालामुखी थी : अब वहाँ मूल्यवान चीतलों की जन्मस्थली थी। हम दोनों फ़ान्ज़ा में अपने पूर्वजों के भूमिगत वार्तालाप को सुनते, यहीं जीवन की जड़ का खोजी लूवेन हमें इस मूल के जादुई गुणों के बारे में बताता जिसमें आदमी को चिरयुवा और सुन्दर बनाने की क्षमता थी। उसने हमें जीवन की जड़, मृगशृंगों और किन्हीं उपचारक खुमियों से बना चूर्ण तक दिखाया था, पर जब हम हँसते हुए उससे सदाबहार जवानी और खूबसूरती का चूर्ण माँगने लगे उसने नाराज होकर हमारे साथ बोलना बन्द कर दिया। शायद वह इसलिए खिन्न हो गया कि हम उसकी बातों पर विश्वास नहीं करते और हँसी उड़ा रहे थे। यह भी हो सकता था कि वह, जिसे विश्वास था कि जीवन की जड़ की खोज के लिए निर्मल आत्मा होनी चाहिए, इस ओर इंगित करना चाहता था कि हमें भी उसी की, खोजी की तरह अपनी आत्मा की निर्मलता के बारे में सोचना चाहिए। यह भी सम्भव है कि बूढ़ा लूवेन हमारे सुख पर जहाँ-तहाँ छाती काली घटाओं में चमकती बिजलियों को देख सकता हो। मुझमें दो व्यक्ति जी रहे थे, वही जो 'हुआ-लू' सुन्दरी के सम्बन्ध में प्रकट हुए थे : एक—शिकारी और दूसरा—अभी तक मुझे अज्ञात व्यक्ति। और जब हम 'हुआ-लू' की घात में बैठने के लिए मेरे अंगूर के बेलों के तम्बू की ओर जा रहे थे, मैंने

एक गलती कर दी—मैंने नहीं, बल्कि मुझमें बैठे शिकारी ने। वह क्षुब्ध हो गयी और अचानक मेरे प्रति उसका व्यवहार बदल गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि आकस्मिक वज्रपात ने हमारे गठबन्धन को काट दिया। पर मैं फिर से अपने अहम को समेटकर अपनी स्वाभाविक, सबसे बुलन्द चोटी पर पहुँच गया। तब हम अंगूर की बेलों के तम्बू में बैठे थे—अचानक झरोखे से हमें अपनी सुन्दरता की छटा बिखरेती 'हुआ-लू' दिखायी दी। हिरनौटे के साथ उसने मैदान को पार किया और हमारे बिल्कुल पास आकर अंगूर की पत्तियाँ खाने लगी, फिर आगे कहीं झाड़ियों में चली गयी। अपनी उसी बुलन्द चोटी पर रहते हुए मैं उसे 'हुआ-लू' से अपनी भेंट के बारे में बताने लगा जब वह पिछली टाँगों पर खड़ी थी और उसके नन्हे-नन्हे खुर अंगूर की लताओं के जाल में घुसे हुए थे और कैसे मैं इन खुरों को पकड़ने के लोभ को दबाते हुए कँपकँपा रहा था, और मुझे अज्ञात किसी दूसरे व्यक्ति ने सुष्ठुता के क्षण को आत्मसात करने में मेरी सहायता की, और मानो पुरस्कार-स्वरूप यह पुष्प-मृग राजकुमारी में परिवर्तित हो गया...

अपनी इस कहानी से मैं उसे दिखाना चाहता था कि मैं उदात्तता के शिखर पर रह सकता हूँ, कि इससे पहले की मेरी गलती संयोगमात्र थी और मैं कभी उसे नहीं दोहराऊँगा। मैं उसकी ओर देखे बिना, मानो हमें घेरे हरियाले वातावरण से बोल रहा था। मैं उससे नज़रें मिलाये बिना अपने दिल का सबसे गहरा राज खोल देना चाहता था और जब मुझे लगा कि मैं अपना लक्ष्य प्राप्त कर चुका हूँ, अब तो मैं उसकी आँखों से अपनी आँखें मिला सकता हूँ, बस अब मैं उनमें देखूँगा... मैंने सोचा कि वहाँ नीलिमा ही नीलिमा देखूँगा पर अचानक सब उल्टा ही अजीब-सा निकला—मुझे वहाँ आग मिली। दहकते गाल, अधमुंदी आँखें, वह घास पर लेट गयी। उसी क्षण स्टीमर का भोंपू सुनायी पड़ा, वह उसे सुने बिना नहीं रह सकती थी पर वह सुन नहीं रही थी। और मैं ठीक उसी तरह जब हिरणी से साक्षात्कार हुआ था, जड़वत हो गया, फिर मैं भी उसी की तरह लपटों में दहक रहा था, फिर धातु मेरी तप कर सफ़ेद हो गयी, पर मैं जड़ बैठा रहा। तब स्टीमर का भोंपू दुबारा बजा, वह खड़ी हुई, बाल ठीक किये और मेरी ओर देखे बिना चली गयी...

4

सागर के शोर में ऐसी क्या बात है कि वह तट पर खड़े मानव को सांत्वना प्रदान करता है? लहरों के थपेड़ों की अनवरत ध्वनि पृथ्वी गृह के जीवन के दीर्घकाल के बारे में बताती है, सागर की लहरें ग्रह की घड़ी के समान हैं। और जब इस दीर्घकाल की घड़ियाँ तट पर बिखरी सीपियों, तारामीनों और जलसाहियों के बीच मानव के अल्प

जीवन के क्षणों से जुड़ती हैं तो सम्पूर्ण जीवन के बारे में गहन मनन का सूत्रपात होता है और मानव की तुच्छ व्यक्तिगत पीड़ा कुण्ठित हो जाती है, कहीं दूर से आती उसकी हल्की-दबी कसक भर रह जाती है...

सागर के ऐन किनारे काले दिल की आकृति का पत्थर था। शायद कभी किसी प्रचण्डतम झंझावात ने उसे चट्टान से तोड़कर किसी दूसरी, जलमग्न चट्टान पर लापरवाही से टिका दिया : दिल की आकृति का यह पत्थर, अगर उससे छाती को चिपकाकर उस पर जड़वत लेट जाता तो वह मानो लहरों के थपेड़ों से हौले-हौले डोलता लगता। पर मैं सही-सही नहीं जानता कि ऐसा सम्भव भी है या नहीं। हो सकता है कि यह सागर और पत्थर नहीं बल्कि खुद मैं ही अपने दिल की धड़कनों से हिल रहा होऊँ, मेरा एकाकीपन इतना बोझिल था और किसी मानव की संगत की इतनी उत्कट इच्छा थी मुझमें कि इस पत्थर को ही मैं इंसान मान बैठा और उसके साथ इंसानों जैसा व्यवहार किया।

पत्थर-दिल ऊपर से काला था और उसका पानी के पासवाला हिस्सा बेहद हरा। इसका कारण यह था कि जब ज्वार आता और पत्थर पूरा पानी में डूब जाता तो हरे शैवाल कुछ देर जी लेते और जब भाटे के साथ पानी चला जाता वे नये ज्वार के पानी की आस में लटक जाते। मैं इस पत्थर पर चढ़कर तब तक देखता रहा जब तक स्टीमर आँखों से ओझल न हो गया। इसके बाद मैं पत्थर पर लेट गया और बड़ी देर तक सुनता रहा; यह पत्थर-दिल अपने ही ढंग से धड़क रहा था और धीरे-धीरे करके इस दिल के जरिये सारे परिवेश से मेरा नाता जुड़ गया, और सब कुछ मुझे अपना, सजीव लग रहा था। धीरे-धीरे करके पुस्तकों से प्रकृति के जीवन के बारे में सीखी बातें कि सब अलग-अलग होते हैं, लोग—ये लोग हैं, जानवर—केवल जानवर ही हैं, पेड़-पौधे भी और मृत पत्थर भी अलग हैं—ये सब, अपनी नहीं, पुस्तकों से ली गयी बातें, मानो पिघलकर उड़ गयीं और मुझे सब कुछ मेरे अपनों की तरह लगने लगा, दिवालोक में सब कुछ लोगों की तरह लगने लगा : पत्थर, शैवाल, तट से टकराती लहरें और पत्थरों पर ठीक उसी तरह अपने डैने सुखाते पनकौए, जैसे मछलीमारी से लौटकर मछुए अपने जाल सुखाते हैं लहरों की थप-थप ने मुझे दिलासा देकर सुला दिया और जब मुझे होश आया तो तट और मेरे बीच पानी ही पानी था; पत्थर आधा पानी में डूब चुका था, उसके चारों ओर शैवाल ऐसे हिल रहे थे मानो ज़िन्दा हों, और भूजिह्वा पर बैठे पनकौए अब लहरों की मार में आ गये थे : वे बैठे अपने डैने सुखा रहे थे—अचानक लहर आकर उन्हें नहला देती, कभी-कभी तो वे लुढ़क जाते, पर वे फिर से संभलकर बैठ जाते ओर सिक्कों पर बने उकाबों की तरह डैने फैलाकर सुखाने लगते। तब मेरे मन में यह प्रश्न उठा, जो मानो समाधान के लिए बड़ा महत्वपूर्ण और आवश्यक था : पनकौए क्यों इसी भूजिह्वा पर जमे रहते हैं, अपने डैने सुखाने के लिए कुछ ऊपर क्यों नहीं चले जाते?

और यह अगले दिन की बात है, मैं फिर से वहाँ आया सागर की लहरों की थप-थप को सुनने, बड़ी देर तक मैं उस दिशा में ताकता रहा जिधर स्टीमर गया था और जब सुध लौटी तो मैंने अपने को धुंध से घिरा पाया। धुंध में तट पर कुछ करते पुनर्वासी कठिनाई से दिखायी दे रहे थे। मैंने सोचा कि उनमें से चाहे किसी से पूछो, हरेक मुझे बेघर आवारा ही कहेगा और झट से अपनी कुल्हाड़ी या बेलचा छिपा देगा ताकि मेरी नज़र न पड़ जाये। कितनी गलती पर हैं वे! था मैं आवारा, पर अब मैं छलनी-छलनी हो चुका हूँ और इसकी अपनी पीड़ा के माध्यम से सर्वत्र मुझे एक ही अनुभूति होती है : अब जहाँ जाऊँ वहीं मेरी जन्मभूमि है, धरती पर सभी जीवधारियों में मेरे जैसी ही कुछ बात है, और यह लगता है कि मेरे लिए अब खोजने को कुछ रहा नहीं, बाहर चाहे कोई भी परिवर्तन हो पर मेरे अन्दर वह कुछ भी नया नहीं भर सकता। मेरे दिमाग में यह विचार उमड़ रहा था कि जन्मभूमि वहाँ नहीं जहाँ बस तुम्हारा जन्म हुआ, बल्कि वहाँ होती है जहाँ तुम यह समझे कि तुम्हें अपना सुख मिला, उसे गले लगाने के लिए तुम आगे बढ़े, उस पर विश्वास करके तुमने आत्मसमर्पण किया, और वहाँ से उसी बिन्दु पर गोलियां चलने लगीं जहाँ तुम्हारा सुख खड़ा है।

सागर की ग्रीष्मकालीन भभक ऊपर उठ रही थी, पर्वतमाला पर वह ठण्डी होती और कोहरे व झींसी में बदलकर नीचे लौट रही थी। पर मुझे प्रतीत हो रहा था मानो चौड़े-चौड़े सफ़ेद लबादों में लिपटे दैत्याकार चिट्टे निशानेबाज लहलहाते-से चढ़ाई कर रहे हैं और मुझे फौरन गोलियों से नहीं बल्कि छोटे-छोटे छर्रों से छलनी कर रहे हैं ताकि मैं छलनी बनकर नष्ट हुआ अपने आप में घुटकर जिऊँ, तड़पूँ और इस अनिवार्य यातना के माध्यम से सब समझ जाऊँ। नहीं! अब मैं आवारा नहीं रहा और पनकौओं को मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ कि इस भूजिह्वा पर डैने सुखाने में कठिनाई के बावजूद भी वे क्यों इससे ऊँची किसी दूसरी चट्टान पर नहीं चले जाते : यहाँ उन्हें मछली का शिकार करना पड़ा और वे यहीं रह गये। वे सोचते हैं : "अगर ऊपर चले गये जहाँ डैने अच्छी तरह सूखते हैं तो कहीं मछली हाथ से न निकल जाये। नहीं हम इसी भूजिह्वा पर रहेंगें।" बस रहते हैं यहीं, काट रहे हैं ज़िन्दगी, समुद्र में भूजिह्वा को आबाद कर रहे हैं। मैं यह भी महसूस कर रहा था कि देखो यह दिल जैसा पत्थर पड़ा लहरों के थपेड़ों से हौले-हौले हिल रहा है और उसे इसी तरह सौ साल तक, इससे भी अधिक, हज़ार साल तक यूँ ही पड़े-पड़े हिलना पड़ेगा, पर उसके समक्ष मुझमें कोई विशेष श्रेष्ठता नहीं है तो मैं क्यों अपना स्थान बदलूँ और सान्त्वना पाऊँ? कोई सान्त्वना नहीं!

और जैसे ही मैंने पूरी शक्ति के साथ, पूरी दृढ़ता के साथ अपने से कहा कि मेरे लिए कोई सान्त्वना नहीं, सुख की पुनरावृत्ति नहीं और कहीं से किसी अच्छाई की प्रतीक्षा का प्रलोभन व्यर्थ है तो कुछ समय के लिए मेरी पीड़ा मिट गयी और पल भर के लिए मुझे यह तक लगा कि गोलियों से छलनी होने के बाद भी मेरे लिए जीवन जारी

है। तब मुझे अपने लूवेन की याद आयी और मैं अपने नीड़ की तरह उसकी फ़ान्ज़ा की ओर चल पड़ा।

उस रात खड्ड की गहराई में भरे उमस ने सभी पंखदार कीड़ों को उड़ा दिया और उनमें से करोड़ों, अदृश्य चाँद से मानो चाँदनी उधार लेकर अपनी नन्ही-नन्ही बत्तियाँ जलाये हवा में स्वयंवर रच रहे थे। मैं फ़ान्ज़ा के ओसारे में बैठा था और शुरू से लेकर आखिर तक किसी जुगनू के पथ पर नज़रें टिकाये रखने की कोशिश कर रहा था। उनमें से हरेक को बेहद अल्पकालीन ज्योति मिली थी, एक सेकण्ड, शायद दो सेकण्ड चमककर वे अन्धकार में विलीन हो जाते पर तभी नयी ज्योति प्रकट हो जाती। क्या यह वही कीट होता जो कुछ दम लेने के बाद फिर से अपने चमकीले पथ को जारी रखता या एक का सफर समाप्त होता और दूसरा उसे जारी रखता जैसे कि हमारी मानवी दुनिया में होता है?

"लूवेन," मैंने पूछा, "तेरा यह कैसे समझता है?"

अचानक लूवेन ने उत्तर दिया :

"मेरा अब वैसे ही समझता जैसे तेरा।"

इसका क्या मतलब था?

तभी ज़मीन के अन्दर, जहाँ सदा की तरह अनवरत घटता-बढ़ता वार्तालाप जारी था, अचानक कुछ गरजा। लूवेन ने कान लगाकर सुना और बेहद गम्भीर हो गया।

"शायद वहाँ पत्थर गिरा है न?" मैं बोला।

वह मेरी बात नहीं समझा। मैंने हवा में हाथ से गुफा बनायी, इशारे से बताया कि कैसे पत्थर पानी में गिरा और उसने चश्मे की धारा को रोक दिया। लूवेन पूरी तरह मुझसे सहमत हो गया और फिर से बोला :

"मेरा अब वैसे ही समझता जैसे तेरा।"

उसने दूसरी बार ऐसा कहा पर मैं अभी तक समझ न पाया था कि उसका मतलब क्या है। अचानक लाइबा दुम दबाकर दौड़ी और फ़ान्ज़ा के कोने में दुबक गयी, यही प्रतीत होता था कि कहीं बहुत पास से घास गुजरा है, क्या पता वह यहीं कहीं पास में पत्थरों में घात लगाकर लाइबा को दबोचने के लिए बैठा हो। हमें अपनी रक्षा के लिए अलाव जलाना पड़ा और तब असंख्य पतंगे आग को देखकर हमारे पास आ जमा हुए। इस तपिश और उमस भरी रात को वे इतने अधिक थे कि उनके पंखों की फड़फड़ स्पष्ट सुनायी दे रही थी। मैंने कभी ऐसा नहीं देखा था कि इतने अधिक पतंगे हों और रात की हवा में उनकी फड़फड़ सुनायी दे। अगर मैं अभी हाल की तरह सामान्य और स्वस्थ होता तो इस फड़फड़ाहट को इतना विशेष महत्व न देता : जीवन की फड़फड़ाहट है बस! पर अब न जाने क्यों इस सब का मुझसे गहरा वास्ता था। मैं चौकन्ना होकर सुन रहा था और अत्यधिक आश्चर्य के कारण आँखें फाड़े मैंने लूवेन से पूछा कि इसका मतलब क्या है

और लूवेन ने तीसरी बार अर्थपूर्ण लहजे में कहा :

"मेरा अब वैसे ही समझता जैसे तेरा।"

तब मैंने गौर के साथ लूवेन की ओर देखा और अचानक उसकी बात का मतलब मेरी समझ में आ ही गया : लूवेन का ध्यान न उड़ते जुगनुओं में अटका था, न भूमिगत भूस्खलन में, न असंख्य पतंगों के जीवन की फड़फड़ाहट में—वह तो मुझी पर केन्द्रित था। वह तो इस सम्पूर्ण नैसर्गिक जीवन को कब का आत्मसात कर चुका था और उसी में साँस लेता था, और निःसन्देह वह सब कुछ अपने ही ढंग से समझता था, पर उसके लिए इस सबके प्रति मेरे ध्यान के माध्यम से मुझको समझना ज़रूरी था। बेशक, वह खूब अच्छी तरह जानता था कि स्टीमर किसको मुझसे छीनकर ले गया। और अब उसने बिज्जू की खाल उठायी जो जीवन की जड़ की खोज के दौरान सदा उसके साथ रहती थी और वहीं मेरे पास ओसारे में उस पर कुत्ते की तरह गठरी बनकर लेट गया। वह हमेशा ऐसी नींद सोता कि रात भर उसके साथ बातें की जा सकतीं और वह नींद में ही विवेकपूर्ण प्रश्न का भी और सोते आदमी की अस्फुट बड़बड़ का भी उत्तर देता।

अब, जब बहुत साल बीत चुके हैं और मैं सब कुछ झेल चुका हूँ। मैं सोचता हूँ कि लौकिक जीवन की सम्पूर्ण आत्मीयता की समझ हमें दुख नहीं, जैसा कि मैं उस रात समझता था बल्कि हर्ष ही देती है; कि दुख तो हल की तरह बस मिट्टी को पलटकर नयी जीवन्त शक्तियों के लिए सम्भावनाएँ ही उभारता है। पर ऐसे बहुतेरे भोले लोग हैं जो हमारे से सम्बन्धित अन्य लोगों के जीवन की हमारी समझ का श्रेय सीधे यातना को दे देते हैं। मेरा भी तब यही हाल था मानो अपनी पीड़ा से अचानक मैं सब कुछ समझने लगा। नहीं, यह पीड़ा नहीं बल्कि मेरी गहराइयों से फूटता जीवन का हर्ष था।

"लूवेन," मैंने पूछा, "कभी तेरी औरत रही है?"

"मेरा नहीं समझता," लूवेन ने उत्तर दिया।

"एक सूरज," मैं बोला।

और घटाने का इशारा किया। इसका मतलब एक दिन मैंने घटा दिया और अर्थ निकला **कल** का। दो उँगलियों का मतलब—कल हम दो थे। एक उँगली दिखाकर अपनी ओर इशारा करता हूँ।

"आज मैं अकेला हूँ।"

और उस ओर दिखाकर जिधर स्टीमर गया था मैंने कहा :

"वहाँ **औरत** है!"

"मदामा!" हर्ष के साथ लूवेन बोला।

वह समझ गया : मेरी औरत का मतलब उसके लिए "मदामा" है। और उसने आँखें बन्द करके सिर लिटाकर दिखाया।

"मदामा सो-सो!"

मतलब उसकी मदामा मर चुकी है।

"यह तेरी बीवी थी?"

वह फिर मेरी बात नहीं समझा, मैंने फिर से उसे इशारों से समझाया, दो बड़े साथ सोते हैं और छोटे-छोटे पैदा होते हैं।

लूवेन समझ गया और उसका चेहरा खिल उठा : उसकी भाषा में पत्नी दादी कहलाती थी और मंगेतर—मदामा। उसने इशारों से बताया : आधे कद का आदमी, दूसरा उससे छोटा, तीसरा उससे एक सिर छोटा, एक और, इसके बाद एक और, और सबसे छोटा पीठ पर बँधा और पेट में एक और है...

"बहुत, बहुत और हाथ से काम करता!"

और यह दादी, उसके भाई की पत्नी थी, भाई उसका "सो-सो" हो गया था और उसकी अपनी मदामा भी "सो-सो" हो गयी थी और उसकी अपनी दादी "सो-सो" और लूवेन भाई की दादी के लिए काम करता था और कमाकर शंघाई भेजता था।

हमारी रात जारी थी। मैं नींद में बड़बड़ा रहा था :

"सो-सो मदामा!"

और लूवेन उत्तर में कह रहा था :

"जिओ-जिओ मदामा!"

शायद हुआ यही कि बाघ हमारे पास नहीं रुका बल्कि आगे चला गया। लाइबा शीघ्र ही फ़ान्ज़ा से निकल आयी और लूवेन के पास सिमटकर लेट गयी। स्वाभाविक ही, अलाव बुझ चुका था। पंखों की फड़फड़ाहट बन्द हो गयी, पर सुबह तक चाँदनी की बत्तियाँ उड़ती स्वयंवर रचाती रहीं और पेड़-पौधे नमी से सराबोर हवा को चूसकर तश्तरियों की तरह अपने चौड़े पत्तों में पानी भरते और भरकर उसे अनायास उंडेलते जा रहे थे...

भोर के साथ फिर से अपने चौड़े लबादों में चिट्टे निशानेबाज समुद्र से निकले और फिर से मुझ पर छर्रे बरसाने लगे।

यह रही वह चट्टान। अश्रु-ग्रंथियों की तरह उसकी असंख्य दरारों से नमी रिसकर बड़ी-बड़ी बूँदों में बदल जाती है और लगता है कि यह चट्टान सदा रोती रहती है। यह आदमी नहीं, पत्थर है; मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पत्थर कुछ महसूस नहीं कर सकता, पर मैं तो आदमी ही ऐसा हूँ, मेरी आत्मा इतनी भावुक है कि मैं पत्थर से भी सहानुभूति रखे बिना नहीं रह सकता अगर मैं उसे बस अपनी आँखों से आदमी की तरह रोता देख लूँ। मैं फिर से इस चट्टान पर लेट गया, दिल मेरा धड़क रहा था पर मुझे लगता था कि यह चट्टान का दिल धड़क रहा है। बस आप कुछ मत कहिये, कुछ मत कहिये, मैं खुद जानता हूँ—यह तो मामूली चट्टान है! पर मुझे किसी मानव के साथ की कितनी ज़रूरत थी कि मैंने इस चट्टान को अपना मित्र मान लिया और दुनिया में केवल वही अकेली जानती है कि उसकी धड़कन से अपनी धड़कन मिलाकर मैं कितनी बार चिल्ला चुका हूँ :

"शिकारी, ओ शिकारी, तूने क्यों उसे जाने दिया, क्यों नहीं पकड़े खुर!"

5

उस समय मैं कितना भोला-भाला था! तब मुझे विश्वास था कि अगर मैं अपनी मंगेतर को हिरणी की तरह पकड़ लेता तो बस जीवन की जड़ का प्रश्न हल हो गया होता। बच्चो मेरे, प्यारे मेरे नौजवानो, उस समय मैं भी आप ही की तरह अपनी जवानी के कारण उसको हद से ज़्यादा महत्व देता था जिसके बारे में अब आप कहते हैं **स्वाभाविक ही तो है** और जो मानो लगभग बिना आवरण के हो सकता है और जिसका बिना आवरण के कोई महत्व हो सकता है। या बकौल आपके, फूलों और गुलाबों के बिना भी प्रेम हो सकता है। हाँ, ये बेशक सही है कि हमारे जीवन की जड़ ज़मीन में है, इस पक्ष से हमारा प्रेम पशु-पक्षियों जैसा ही है, पर इसी वजह से डंठल और फूलों को भी ज़मीन में गाड़ देना और रहस्यमय जड़ को उघाड़कर मानव जीवन के मूल को आवरण से वंचित करना उचित नहीं। खेद की बात है कि यह सब तब स्पष्ट होता है जब खतरा टल जाता है, पर नयी पीढ़ी बड़ों के अनुभव में सबसे कम विश्वास करती है और इस मामले में वह सबसे अधिक इच्छा लावारिस होने की रखती है। पर मैं सौभाग्यशाली था कि मेरे पास लूवेन था—सबसे स्नेही, शुभचिन्तक, और मैं यह तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि दुनिया में सबसे **सभ्य** पिता था वह। जी हाँ, अपने वनवास में मुझे सदा के लिए यह विश्वास हो गया कि सुवासित साबुन और टुथब्रश सभ्यता का तुच्छतम अंश मात्र है, उसका सार तो लोगों को समझने की कला और उनके आपसी रिश्ते में है। धीरे-धीरे मेरे लिए स्पष्ट हो गया कि लोगों का उपचार लूवेन के जीवन का ध्येय था—चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से वह कैसा था, इसके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता पर मैंने अपनी आँखों से देखा कि सब लोग हँसमुख होकर उसके पास से लौटते और बहुत-से बाद में शुक्रिया अदा करने के लिए आते थे। टैगा प्रदेश के कोने-कोने से मान्ज़े*, चीनी शिकारी, बहेलिये, जिन्सेंग की जड़ के खोजी, खुनखूज़**, पाम से ढकी त्वचावाली औरतों और बच्चों के साथ विभिन्न कबीलों के आदिवासी, यायावर, देशनिकाले की सजा काटने वाले, पुनर्वासी उसके पास आते थे। टैगा प्रदेश में उसके ढेरों परिचित थे। लगता है कि जीवन की जड़ और मृगश्रृंग के बाद वह पैसों को सबसे प्रभावी दवा मानता था। उसे इस दवा की कभी कोई कमी नहीं रही : उसे बस अपने लोगों में से किसी को कहने भर की देर थी और दवा आ जाती। एक

* मान्ज़ा—उस्सूरी प्रान्त में रहने वाला चीनी मूल का निवासी।—सं.

** खुनखूज़—जरायम पेशा चीनियों का स्थानीय नाम।—सं.

बार भरी गर्मियों में जुसुख में ऐसी बाढ़ आयी कि खेतों में खड़ी फसल बह गयी और पुनर्वासी बरबाद हो गये। तब लूवेन ने अपने मित्रों को सूचना भिजवायी और इसी चीनी सहायता की बदौलत रूसी लोग भुखमरी से बच गये। इस प्रकार यहीं मैं ज़िन्दगी भर के लिए सीख गया, क़िताबों से नहीं बल्कि उदाहरण से, कि संस्कृति कफ़्तों और कफ़लिंकों में नहीं बल्कि सभी लोगों के बीच आत्मीयता के सम्बन्धों में है जो पैसों तक को दवा में बदल देती है। शुरू में लूवेन के मुँह से यह सुनकर कुछ हँसी-सी आती थी कि पैसे—दवा हैं, पर हमारे वन्य जीवन की परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ है कि मैं स्वयं उन्हें दवा समझने लगा। जिन्सेंग, मृगश्रृंगों, और पैसों के अलावा गोराल मृग का खून, कस्तूरी, काकड़ की पूँछ, उल्लू का भेजा, ज़मीन और पेड़ों पर उगने वाली तरह-तरह की खुमियाँ, जड़ी-बूटियाँ भी उसके लिए दवाएँ थीं जिनमें बहुत-सी जानी-पहचानी थीं जैसे बबूने के फूल, पुदीना आदि। एक बार वृद्ध बड़े प्रेम से जड़ी-बूटियों को छाँट रहा था, उसके चेहरे को ताकते हुए मैंने साहस करके पूछ ही लिया :

"लूवेन, तेरा बहुत समझता है। मुझे बता, मैं बीमार हूँ या स्वस्थ?"

"सब लोग," लूवेन ने उत्तर दिया, "एक ही बार में स्वस्थ भी होते हैं और बीमार भी।"

"मुझे किस चीज़ की ज़रूरत है?" मैंने पूछा। "हिरण के सींगों की?"

वह बड़ी देर तक हँसता रहा : मृगश्रृंग वह मर्दानगी की ताकत बढ़ाने के लिए देता है।

"जिन्सेंग से फायदा नहीं होगा मुझे?" मैंने पूछा।

लूवेन की हँसी बन्द हो गयी, वह बड़ी देर तक मुझे घूरता रहा पर इस बार कुछ नहीं बोला, परन्तु अगले दिन उसने कहा :

"तेरी जिन्सेंग बड़ी-बड़ी होती है, मेरा जल्दी तुझे दिखायेगा।"

लूवेन कभी भी यूँ ही नहीं कहता था और मैं इस औषध का चूर्ण ही नहीं बल्कि टैगा में उगने वाली इस जड़ को अन्ततः अपनी आँखों से देखने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। और एक बार बहुत रात गये लाइवा भौंकती हुई खड्ड की गहराई की ओर दौड़ पड़ी। लूवेन उसके पीछे-पीछे फ़ान्ज़ा से निकला और मैं भी उसके पीछे रायफल उठाकर बाहर निकला।

अँधेरे से लाइवा के साथ प्रकट होते वह बोला :

"बन्दूक नहीं चाहिए, हमारा लोग है।"

शीघ्र ही छः खूब अच्छी तरह हथियारबन्द चीनी हमारे पास आये, ये रायफलों और बड़ी-बड़ी कटारों से लैस सुन्दर मंचूरियाई थे।

'हमारा लोग!" लूवेन ने मुझसे फिर कहा और मेरी ओर इशारा करके उसने चीनी में उनसे भी मेरे बारे में शायद यही कहा होगा : "हमारा लोग"।

मंचूरियाइयों ने झुककर मेरा अभिवादन किया, और वे बड़े कद्दावर लोग झुक-झुककर बारी-बारी से हमारे तंग घर में घुस गये। अन्दर वे सब घेरा बनाकर बैठ गये, फ़र्श पर उन्होंने कुछ रखा और उसके साथ कुछ करके सबके सब फौरन जड़ होकर अवलोकन में तल्लीन हो गये।

"लूवेन," मैं धीरे से बोला, "क्या मैं भी देख सकता हूँ?"

लूवेन ने फिर से चीनी में कहा हमारा लोग, सबके सब मंचूरियाई असीम आदर के साथ मेरी ओर मुड़े और मेरे लिए स्थान बनाते हुए मुझे भी साथ बैठकर उनकी तरह कुछ देखने का न्यौता देने लगे।

बस तभी मैंने पहली बार जीवन की जड़, जिन्सेंग देखी, इतनी विरली और मूल्यवान कि उसे ले जाने का जिम्मा छः शक्तिशाली और अच्छी तरह सशस्त्र नौजवानों को सौंपा गया। देवदार की छाल से बनी छोटी-सी पेटिका में काली मिट्टी पर पीले रंग की छोटी-सी जड़ रखी थी, देखने में वह मामूली अजमोद की जड़ लगती थी। मुझे स्थान देकर सब चीनी फिर से मूक अवलोकन में तल्लीन हो गये और मैं भी ध्यान से देखते हुए, आश्चर्य के साथ इस जड़ में मानव आकृति की रूपरेखा को पहचान रहा था : फैली टाँगें, हाथ भी स्पष्ट रूप से दिख रहे थे, गर्दन, उसके ऊपर टिका सिर और सिर पर चोटी तक थी, हाथों और पाँवों पर लम्बी-लम्बी उँगलियाँ-सी थीं। पर मैं मानव देह जैसी जड़ पर इतना मंत्रमुग्ध न था—जड़ों की तो माया ही ऐसी होती है कि उनमें न जाने कैसी-कैसी आकृतियाँ देखी जा सकती हैं। मेरी चेतना पर जीवन की जड़ के अवलोकन में तल्लीन इन सात मानवों के मूक प्रभाव ने ही मेरा ध्यान जड़ के अवलोकन पर केन्द्रित कर दिया था। ये सात जीते-जागते इंसान पिछले हज़ार सालों में माटी में विलीन हुए करोड़ों लोगों में अन्तिम थे, ये सब, लाखों-करोड़ों इन्हीं सात अन्तिम जीवितों की तरह जीवन की जड़ में आस्था रखते थे, बहुतों ने शायद इसी भक्तिभाव के साथ उसका अवलोकन किया होगा, बहुतों ने उसका पेय पिया होगा। मैं आस्था के इस सम्मोहन के समक्ष टिक न सका और वैसे ही, जैसे सागर के तट पर, मैंने अपने को किसी विशाल ग्रहीय काल की इच्छा पर छोड़ दिया था, अब ठीक उसी तरह अलग-अलग इंसानी जिन्दगियाँ मेरे लिए लहरों के समान थीं और वे मुझ जीवित की ओर वैसे ही दौड़ रही थीं जैसे तट की ओर और मानो उस जड़ की शक्ति को स्वयं अपने अस्तित्व से नहीं जो खुद ही शीघ्र मिट जायेगा बल्कि ग्रहीय, शायद इससे भी सुदूर काल के सन्दर्भ में समझने का अनुरोध कर रही थीं। बाद में मुझे वैज्ञानिक पुस्तकों से पता चला कि जिन्सेंग—एरालिया परिवार की अवशिष्ट वनस्पति है, कि पृथ्वी के तृतीय कल्प में वह जिस वनस्पति और जन्तु जगत में रहती थी वह अब पहचान के परे बदल गया है पर इस ज्ञान ने, जैसा कि अक्सर होता है, मेरे मन में लोगों की आस्था के सम्मोहन से प्रणीत भावों को निःस्पन्द नहीं किया। अपने पूरे ज्ञान

के बावजूद पहले की तरह अब भी इस जड़ी का भाग्य मुझे आन्दोलित करता है जो दसियों सहस्राब्दियों के काल में तपते रेत से लेकर हिमानी मरुस्थल तक के परिवेश में रही और अन्ततः उसने शंकुधारी वनों तथा उनमें विचारते भालुओं का साथ पाया...

बड़ी देर तक अवलोकन करने के बाद अचानक सबके सब मंचूरियाई एक साथ बोलने लगे, जहाँ तक मैं समझा, वे इस जड़ की संरचना की सूक्ष्मतम बारीकियों पर बहस कर रहे थे। क्या पता इस पर बहस कर रहे हों कि फलाँ-फलाँ गाँठ नर जड़ के लिए उचित है और उसको शोभा देती है, पर मादा जड़ को उल्टे वह शोभा नहीं देती, बेहतर न हो कि अगर हम सावधानी से उसे काट दें। ऐसे ढेरों प्रश्न हो सकते थे, बहुत से अचानक खड़े हो जाते जिनसे मतभेद पैदा हो जाता और प्रचण्ड बहस छिड़ जाती। पर हरेक ऐसे मतभेद को लूवेन के अन्त में मुस्कराता हुआ सुलझा देता और सब उससे ज़रूर सहमत हो जाते। लूवेन अब तैश में नहीं आ रहा था, बल्कि वह शान्त था, अपने विषय में किसी भी पण्डित की तरह उसका भी बोलबाला था। लूवेन के निर्णय को सभी निर्विवाद रूप से मान रहे थे। जब उनका आवेश बिल्कुल ठण्डा हो गया और शान्त विचार-विमर्श शुरू हुआ मैंने साहस जुटाकर लूवेन से पूछ ही डाला कि वे इस समय किस विषय में बातें कर रहे हैं।

"बहुत-बहुत दवा," लूवेन ने जवाब दिया।

मतलब, इस समय बात पैसों की हो रही थी, इतनी विरली जड़ का दाम क्या हो सकता है। लूवेन ने बताया कि जिन्सेंग के एक ग़रीब खोजी को यह जड़ मिली थी और उसकी हत्या हो गयी। इस खजाने को एक **उचक** ने, मतलब उचक्के ने हड़प लिया और एक **सौद,** मतलब, सौदागर चीन से सीधा वहाँ आया, बहुत सारी दवा दी और इन लोगों की जड़ ले जाने के लिए भाड़े पर लिया। पर बेशक इस सौद ने बहुत कम दाम दिया, और जड़ का दाम कितना होगा—कोई नहीं जानता। हर सौद दूसरे से खरीदते वक़्त ज़्यादा देगा और बेचते वक़्त ज़्यादा से ज़्यादा लेगा क्योंकि हरसौद उचक होता है।

"अन्त क्या होगा इसका?" मैंने पूछा।

"नहीं होगा खतम," लूवेन ने उत्तर दिया। "ऐसी जड़ घूमो-घूमो माँगता। ऐसी जड़ में बहुत-बहुत दवा होता। छोटा लोग जिसे वह मिली सो-सो करता और बड़ा लोग घूमो-घूमो।"

बहुमूल्य घूमो-जड़ को लूवेन की हिफ़ाज़त में सौंपकर मंचूरियाई पत्थर के ठण्डे फ़र्श पर लेट गये और, शायद पौ फटने से पहले ही चले गये।

6

बड़े अजीब-से शोर ने मुझे जगा दिया, वह खराब मौसम में झँकारते टेलीग्राफ के खम्बे के शोर से बहुत मिलता-जुलता था। पर यहाँ जंगल में टेलीग्राफ का खम्बा आया कहाँ से? आँखें खोलने पर लूवेन दिखायी दिया। वह भी कान लगाकर कुछ सुन रहा था।

"चल, चल!" वह बोला, "तेरा जिन्सेंग उगना माँगता, मेरा तुझे दिखायेगा।"

वह जिन्सेंग के चीनी खोजियों की तरह नीले कपड़े पहने था, ओस की नमी से रक्षा के लिए आगे तेल में भीगा पेशबन्द बँधा था और पीछे—बिज्जू की खाल ताकि बरसात के दिन ज़मीन पर बैठकर आराम किया जा सके, सिर पर बर्च की छाल की तिकोनी टोपी थी, हाथ में लम्बी लाठी थी, ज़मीन पर पड़ी पत्तियों और घास को हटाकर देखने के लिए, कमर पर कटार, जड़ खोदने के लिए हड्डी की बनी कुरेदनी, चकमक पत्थर की थैली लटकी थी। नीले रंग के गाढ़े ने, जिससे क़मीज़ और पतलून सिली थी मुझे उन भयंकर लोगों की याद दिला दी जो ऐसे नीले चीनी खोजियों के शिकार को फ़ेजेंटों का शिकार कहते हैं और सफ़ेद कपड़ोंवाले कोरियनों के शिकार को राजहंसों का।

"यह क्या है?" मैंने उस ओर इशारा करके लूवेन से पूछा जहाँ से खराब मौसम में झँकारते टेलीग्राफ के खम्बे जैसी गुंजार आ रही थी।

"लड़ाई!" लूवेन ने झट से उत्तर दिया।

हमने आग जलाई। मैं ऊपर चढ़ा और वहाँ कूड़े-करकट में मुझे लड़ाई का कारण मिल गया। वहाँ एक बड़ा पतंगा फस गया था और उसके तेज़ी से फड़फड़ाते पंख टेलीग्राफ के खम्बे जैसी गुंजार कर रहे थे। मैंने चीनी को यह दिखाया पर उसने इसे कोई महत्व न दिया और फिर से बोला :

"ऐसा गुंज-गुंज लड़ाई का शकुन है, लड़ाई चलने वाली है।"

मेरी समझ में किन्हीं पुरानी, शायद कभी प्रचलित आस्थाओं के जड़ अवशेषों के रूप में अन्धविश्वास आदमी को इससे अधिक बुरा नहीं बनाते, जितना कि औसत सभ्यता की विभिन्न चीज़ों की अदम्य आदत कुछेक को बनाती है। अंधविश्वासों और किसी खास ब्राण्ड की क्रीम या किसी खास साइज के क़ागज़ के उपयोग की आदतों के बावजूद भी आदमी सभ्य सजीव रह सकता है। पर इस बार लूवेन के अन्धविश्वास से मुझे काफ़ी दर्द हुआ। मैं सोचने लगा : "लड़ाई के बारे में भला अखबार और हमारी परिस्थितियों में पुनर्वासियों द्वारा फैलायी जाने वाली अफवाहें तक क्या प्रकृति के किन्हीं शकुनों से हज़ार गुना सही नहीं होती? और भला पृथ्वी की अक्षय उर्वर क्षमता के बारे में रात के अलाव के पास पतंगों के परों की फड़फड़ाहट अन्धविश्वासी धारणा से क्या कम बताती है?" अन्धविश्वास के प्रति इस बार भी अपनी विशेष घृणा के कारणों का

गहन मननचिन्तन करके मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जीवन की जड़ के बारे में करोड़ों की एक जनता की कई हज़ार सालों से प्रचलित किंवदन्ती ने मुझे इतना मोह लिया था कि मैं उसे अपने निजी अनुभव की उस कसौटी पर जाँचने में कुछ-कुछ डर रहा था जिसका मैं हर किंवदन्ती के सम्बन्ध में बेधड़क उपयोग करता हूँ।

अब यह डर अंधविश्वासों के तनिक-से सम्पर्क से झुँझलाहट में बदल रहा था।

हम पूर्ण अन्धकार में ही फ़ान्ज़ा से खड्ड के रास्ते समुद्र की ओर चल पड़े। अगर दिन निकल भी आता तब भी घने कोहरे के कारण हम कुछ नहीं देख पाते जो गर्मियों में लगभग हमेशा यहाँ छाया रहता है। एकमात्र रोशनी, वह भी नाक के ऐन पास उड़ते जुगनुओं की बत्तियाँ थीं। और देखिये वंशागत अन्धविश्वासों की शक्ति को : जुगनुओं को उड़ते देखकर मुझे रणभूमि में खेत रहे ढेरों लोगों की याद आ गयी। मुझे याद आया कि कैसे वे तड़पकर मरते हुए किसी दूसरे लोक में जा रहे थे। "क्या ये वे ही तो नहीं हैं?" मैं वहशियों की तरह अपने से पूछ रहा था। और उनमें से कुछेक को याद करते हुए मैं अपने मन में सुरक्षित उस वेदना को पाता जो मैंने उनसे अपनी संवेदना के माध्यम से ले ली और इसका परिणाम यह हुआ कि वे तो चले गये और जुगनू बनकर मज़े से उड़ रहे हैं और मैं उनकी वेदना के साथ यहीं रह गया, क्या पता अब किन्हीं मामलों में मैं अचेतन रूप से इस वेदना से ही अभिप्रेत होता होऊँ जिसे मैंने युद्ध में अपने मित्रों को खोते समय अपने में संजो लिया था। पर लूवेन की तो नेकी ही ऐसी थी, यह संयोग न था कि उड़ते जुगनुओं को देखकर वह मानो किसी बात का अनुमान लगाने लगा और जब वह हमेशा के लिए इसे समझ गया, तो उसने यह सारी वेदना अपने में भर ली और बेहतर जीवन में अपनी आस्था को जीवन की जड़ जिन्सेंग की शक्ति से जोड़कर उसने अपने को रोगियों की सहायता के ध्येय को समर्पित कर दिया।

हाँ, तो मैं उड़ते कीटों को देखते हुए अपने ही ढंग से जीवन की जड़ के बारे में किंवदन्ती को मृत और आधुनिक जीवन में हानिकारक उन अन्धविश्वासों से अलग और साफ़ करने का प्रयास कर रहा था जिन्हें सुदूर अतीत हम में छोड़ गया है। उड़ते जुगनूं अचानक अगोचर-से हो गये पर लगता था कि वे ही अपने पीछे यह मद्धिम प्रकाश छोड़ गये हैं और इस प्रकाश में हमें नीचे की विभिन्न चीज़ें दिखायी देने लगीं, वैसे नहीं जब खुली सुवह को पौ फटती है, तब पहले आकाश चमकता है और इसके काफ़ी देर बाद ही ज़मीन की चीज़ें ऊपर से पड़ते प्रकाश से आलोकित होकर दिखायी देती हैं। हम समुद्र के बिल्कुल पास पहाड़ों में थे और कोहरे में चट्टानें हमें काली आकृतियों जैसी लग रही थीं। उनको देखकर मुझे ऐसा स्पष्ट आभास हुआ मानो यह पुष्प-मृग नारी का रूप धारण कर रहा हो और लूवेन भी शायद अपनी किसी मनोवांछित चीज़ के दर्शन कर रहा था। हमें एक-दूसरे को इसके विषय में बताने की आवश्यकता न थी, इसलिए हम दोनों चुपचाप, एक-दूसरे को तनिक भी किसी संकोच में डाले बिना

चल रहे थे। भोर की बेला में पैनी कँपकँपी के साथ पूरे बदन में ठण्ड दौड़ गयी और भोर की ठण्ड की एक सामान्य अनुभूति के फलस्वरूप संसार में घुल गये अपने तन के माध्यम से मुझे लगने लगा मानो सारी प्रकृति अब निरवस्त्र होकर हाथ-मुँह धो रही है। मुझे लगा कि लूवेन भी यही कहना चाहता था जब उसने मुझे अचानक रोका और हाथों से ऐसी क्रिया की मानो मुँह धो रहा हो फिर उसने हाथ फैलाकर संकेत दिया "सर्वत्र, सर्वत्र!" और बोला :

"अच्चा, अच्चा, भौत अच्चा!"

शीघ्र ही साफ़ हो गया कि वह इस तरह मौसम की भविष्यवाणी कर रहा था : प्रशान्त महासागर के तटीय प्रदेश में अक्सर ऐसा होता है कि घने से घना कोहरा भी अचानक अगोचर हो जाता है और हवा जल-वाष्प से सराबोर होने के बावजूद भी एकदम पारदर्शी हो जाती है। हमें ऊँचे तट की एक पगडण्डी पर सूर्योदय के दर्शन हुए, वहाँ किन्हीं झाड़ियों के घने झुरमुट से कभी-कभी, गर्दन पर सफ़ेद छल्लेवाले सुन्दर मंगोलियाई फ़ेज़ेंट निकलकर उड़ रहे थे, और फुर्र से उड़ते हुए न जाने क्यों वे मुड़कर हमारी ओर देखते और अपनी भाषा में कहते : को-को-को... शीघ्र ही मैं समझ गया कि ये झाड़ियाँ क्यों इतनी नीची और बेहद घनी थीं। तूफ़ानों के साथ मिलकर समुद्र ने सदियों तक चट्टान के साथ संघर्ष किया और अन्ततः उसे जीवन के बीज बोने में सफलता मिल ही गयी : चट्टान की दरारों में विभिन्न फूल और बाद में नन्हे बलूत भी उग आये। समुद्र यहाँ जीवन तो ले आया पर शुरू में यह जीवन भी क्या जीवन था! वे बलूत जो समुद्र के बिल्कुल निकट थे, थोड़ा-सा भी सिर उठाने की सोचने तक का साहस न कर पाते थे—वे लेटे-लेटे ही उग रहे थे, उनके पतले-पतले तने रेंगते हुए सागर से दूर भाग रहे थे और वे देखने में बिल्कुल सीधे कढ़े बालों की तरह लग रहे थे। पर हम समुद्र से जितनी दूर हटते जाते नन्हें बलूतों के सिर भी उतने ही उठते जाते, पर यह भी एक निश्चित हद तक : आदम कद से ऊपर वे सूख जाते थे और नीचे की टहनियाँ गुँथकर ऐसा घना झुरमुट बना डालतीं जो उस काल में फ़ेज़टों के रहने के लिए अत्यधिक उचित था जब नयी पीढ़ी को विभिन्न हिंस्र जीवों की नज़र से छिपाकर रखना होता था।

सागर तट से टैगा वन की गहराई में जाते समय उसने फौरन हमारा साथ नहीं छोड़ा : हम कभी उतरते तो कभी फिर से ऊपर चढ़ते चल रहे थे, सूरज कभी आँखों से ओझल हो जाता तो कभी फिर से दर्शन देता और हमें लगता कि मानो नया सूर्योदय देख रहे हों। ऐसा भी हो रहा था कि खाड़ियों, शिलाखण्डों के ढेरों, जलडमरूमध्यों से अटा सागर तट सूरज को नयी-नयी आड़ें प्रदान कर रहा था, इस कारण हर नये सूर्योदय में हमारे सामने तरह-तरह की आकृतियाँ प्रकट हो रही थीं। अन्तिम चट्टान पर, जहाँ से दूर-दूर तक फैला महासागर दिखायी देता था, बड़े विचित्र चीड़ वृक्ष खड़े थे,

देखने में वे जापानी छतरियों और भूमध्य सागरीय पाइन वृक्षों जैसे लग रहे थे। वे इतने झीने थे कि लगता था कि उनका झुरमुट कितना ही घना क्यों न हो पर सागर उसके बीच से साफ़-साफ़ दिखायी देता रहेगा। वहाँ, उस अन्तिम चट्टान से इन पाइनों के बीच से, हम अपनी नंगी आँखों से सागर में ढेरों समुद्री जीवों के सिर देख सकते थे।

जब हम सागर से विदा लेकर गहरे खड्ड में उतरे तो अन्धियारे टैगा वन में भी अपने शिकार को दबोचे पगडण्डी को पार करती चींटी को साफ़-साफ़ देखा जा सकता था। हम काकड़ों, हिरणों, गोराल मृगों और बकरियों के खुरों से कटी, हर प्रकार की वनस्पति से वंचित पगडण्डी पर चल रहे थे, जिसे मानव ने अपने चलने लायक बना डाला था। उस पगडण्डी से हम गहरे कन्दर में उतर गये जिसमें अनाम सोता पत्थरों के ढेरों में निरन्तर अगोचर होता और वहाँ से अपनी भूमिगत बकबक से अपना आभास दिलाता बह रहा था। यहाँ पत्थरों पर मुश्किल से दिखती पगडण्डी कभी सोते के इस पार जाती तो कभी उस पार। पर हमने इस भटकी पगडण्डी को छोड़ दिया और जलधारा के प्रवाह में एक कुण्ड से दूसरे तक अक्सर एक पत्थर से दूसरे पर कूदते चल रहे थे। लूवेन अक्सर मुझे कभी मखमली पेड़ की छाल पर बने निशान को, कभी कंटीली एरालिया की टूटी टहनी को, तो कभी पोपलर के कोटर में ठूँसे काई के टुकड़े को दिखाता चल रहा था और उन्हें याद करने का अनुरोध कर रहा था। ये सभी निशान टैगा वन में संयोग से आये किन्हीं पथिकों, बहेलियों, शिकारियों आदि के लिए नहीं थे—यह सब जीवन की जड़ के अन्य खोजियों के लिए संकेत था : यह रास्ता तलाशा जा चुका है और उन्हें यहाँ बेकार श्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं। पर यही रास्ता मेरी अपनी जीवन की जड़ की ओर ले जाता था और लूवेन मुझे सभी निशानियाँ दिखा रहा था ताकि मैं, जिसे जड़ की खोज का अनुभव न था, बाद में खुद, उसकी सहायता के बिना ढूँढ़ लूँ।

"अगर तूफ़ान काई के इस टुकड़े को कोटर से निकाल दे या वसन्त की बाढ़ निशान वाले पेड़ को उखाड़कर बहा ले जाये या यह चट्टानी दीवार टूटकर हमारा रास्ता ही बन्द कर दे तो क्या करना चाहिए?" मैंने उससे पूछा।

"सिर में साफ़ ईमान होना माँगता," लूवेन ने उत्तर दिया।

मैं समझ गया कि उसका तात्पर्य बुद्धिमानी से है, मैंने कन्दर के दोनों ओर दीवारों की तरह खड़ी चट्टानों, पेड़-पौधों की ओर इशारा किया; सब तबाह हो जायेंगे तो बुद्धिमानी भी कुछ मदद नहीं कर सकेगी।

"सिर मारा गया, मारा गया सिर!" मैंने कहा।

"सिर नहीं होना माँगता," लूवेन बोला, "सिर मारा गया, यहाँ होना माँगता सिर।"

उसने दिल की ओर इशारा किया और मैं समझ गयाकि जीवन की जड़ की खोज के लिए निष्कपट मन के साथ जाना चाहिए और कभी भी पीछे मुड़कर उस ओर नहीं

देखना चाहिए जहाँ सब तहस-नहस हो गया हो। अगर मन साफ़ है तो कोई भी बाधा राह नहीं रोक सकती।

धीरे-धीरे कन्दर की चट्टानी दीवारों की ऊँचाई कम होती गयी और हम दलदलवाले छोटे-से गर्त में पहुँच गये जहाँ से चट्टानों में इस गहरे कन्दर की रचना करने वाला सोता फूट रहा था। यहाँ से, चौड़ी घाटी में उतरनेवाले दर्रे से भव्य देवदार शुरू हो गये थे, वे इतने बिखरे थे और उनकी नयी पौध इतनी नीची थी कि उनके तनों के बीच से बहुत दूर तक नीचे देखा जा सकता था और धूप के चकत्तों, झिलमिलाती छायाकृतियों, पंखों की फिसलती परछाइयों को देखकर इस गाती घाटी के किसी विशेष समृद्ध जीवन का अनुमान लगाया जा सकता था। विभिन्न वृक्षों के बीच नन्हे-नन्हे विविध पक्षी चहचहा रहे थे; यहाँ पोपलर के ऐसे पेड़ थे जिनकी आयु तीन सौ वर्ष से कम न होगी, कभी-कभी जर्जर, झुके, गठीले, कोटरोंवाले पेड़ मिलते, जिनमें हमेशा भालू जाड़ा बिताया करते थे; वहाँ विशाल लिण्डन, ऊँचे तनोंवाले एल्म और कार्क वृक्ष भी थे।

झाड़-झंखाड़ के समृद्ध जीवन के लिए पर्याप्त धूप प्रदान करते विरल भीमकाय वृक्षोंवाली गाती घाटी इतनी सुन्दर थी कि जीवन की जड़ की फलप्रद खोज के लिए आवश्यक निर्मल मन का विचार अनायास ही आ रहा था। चलते-चलते हमने शीघ्र ही गाती घाटी को उत्तर-पश्चिमी दिशा में पार किया और अचानक हमारे सामने किसी प्राचीन नदी के, दूसरी भिन्न वनस्पति से ढकी घाटी में उतरते सीढ़ीनुमा पाट का दृश्य खुला। यहाँ काले पोपलरों के नाटे तनों के बीच श्याम भुर्ज, फ़र, सिल्वर फ़र, चमखरक, छोटे पत्तोंवाले मैपिल आदि वृक्ष थे और जब हम लता-बेलों से गुँथे इस वन से आगे गये तो किसी अज्ञात जलधारा के तट पर वनस्पति तीसरी बार बदल गयी। यहाँ अखरोट के चौड़े पत्तोंवाले वृक्षों के बीच बस कहीं-कहीं देवदार ही थे। बड़े-बड़े विरल वृक्ष झड़बेरी, एल्डर, जामन, जंगली सेब के अत्यधिक घने झुरमुटों में डूबे हुए थे जिनकी छाया में लहलहाती छायाप्रिय घास के बीच ही कहीं जीवन की जड़ जिन्सेंग को खोजना था।

लूवेन और मैंने यहाँ विश्राम किया, हम बड़ी देर तक मौन रहे। हमारे दीर्घ मौन की नीरवता में क्या था? टिड्डों, झींगुरों आदि अन्य संगीतकारों की असंख्य, अपूर्व, अकल्पनीय, विपुल राशि अपने वाद्यों को झँकारते इस नीरवता का समाँ बाँध रही थी : अगर मन में स्वच्छन्द और शान्त चिन्तन-मनन के लिए सन्तुलन हो तो उनका संगीत तनिक भी नहीं सुनायी देता। पर क्या पता ये सब, असंख्य संगीतकार अपने संगीत से ही ऐसा करते हों कि आदमी स्वयं अपने ही ढंग से उसमें भाग लेता है, उन पर ध्यान देना बन्द कर देता है और इसके फलस्वरूप कोई वास्तविक, असाधारण और सजीव रचनात्मक नीरवता छा जाती है यहीं कहीं पास ही में सोता बह रहा था, वह भी लगता था, मौन था; पर अगर किसी आकस्मिक याद से शान्त विचारों का क्रम टूट गया और किसी

प्रियजन को कुछ कहने की असम्भव इच्छा अत्यन्त दबी आह के रूप में फूट पड़ी तो शायद, पत्थरों के बीच दौड़ते इस सोते से झट से फूट पड़ेगा : "बोल-बोल-बोल!" और तब ये सब अश्रव्य संगीतकार, कोटि-कोटि, असंख्य संगीतकार, सबके सब अचानक सोते की संगत करने लगते हैं : "बोल-बोल-बोल!"

लूवेन और मैं किसी पक्षी के बारे में बातें करने लगे जो जीवन की जड़ जिन्सेंग का पहरा देती है। मेरा अनुमान है कि लूवेन इस प्रदेश में रहने वाली तीन क़िस्मों की कोयलों में से एक के बारे में बता रहा था : मानो यह छोटी-सी काले रंग की कोयल जीवन की जड़ का पहरा देती है और उसे केवल वही देख सकता है जिसने अपनी आँखों से जीवन की जड़ को देखते ही तत्क्षण अपनी छड़ी उसके पास गाड़ दी। ऐसा अकसर होता है, अक्सर क्या, जड़ के खोजियों के साथ मानो हमेशा यही होता है कि अंभी-अभी खजाना दिखायी दिया—और देखते ही देखते ग़ायब हो गया : जिन्सेंग पल भर में किसी दूसरी वनस्पति या जीव का रूप ले लेती है। पर अगर तुमने उसे देखते ही अपनी छड़ी गाड़ दी तो वह कहीं नहीं जायेगी। पर हमें अब किसी चिन्ता की ज़रूरत नहीं थी : यह जड़ कोई बीस साल पहले खोजी जा चुकी थी, तब वह बेहद युवा थी और उसे दस वर्ष के लिये आगे उगने के वास्ते छोड़ दिया गया था। पर हुआ यह कि इस स्थान से गुजरते हुए काकड़ का खुर जिन्सेंग पर पड़ गया और इस कारण वह जैसी की तैसी रह गयी। हाल ही में वह फिर से बढ़ने लगी और कोई पन्द्रह साल बाद तैयार हो जायेगी।

"अभी तू दौड़-भाग," लूवेन बोला, "तभी समझेगा।"

हम चुप हो गये। इस सन्नाटे में मैं इसकी कल्पना करने का प्रयास कर रहा था कि पन्द्रह साल बाद मेरे साथ क्या होगा और मेरी कल्पना में मिलन का दृश्य आया। आखिर वियोग के पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे, हम मुश्किल से, डरते-डरते एक दूसरे को पहचान पाये, हम खड़े हैं, खोये-खोये से देख रहे हैं और एक दूसरे को कुछ कह न पा रहे हैं।

आह! कितना वेदनादायी था यह! पर जैसे ही मुँह से आह निकली सोते से अचानक सुनायी पड़ा :

"बोल-बोल-बोल!"

और इसके बाद तो सभी संगीतकार और गाती घाटी के सभी प्राणी गाने-बजाने लगे, सम्पूर्ण नीरवता झंकारकर पुकारने लगी :

'बोल-बोल-बोल!"

"पन्द्रह साल बाद तू जवान आदमी और तेरा मदामा जवान होना माँगता," लूवेन बोला।

इसके बाद हम उठे और सोते की धारा के ऊपर झुके जंगली सेब के तने पर चढ़कर दूसरे किनारे पर चले गये और वहाँ शीघ्र ही विभिन्न जड़ी-बूटियों के बीच लूवेन घुटनों के बल बैठ गया और हाथ जोड़कर बड़ी देर तक ऐसे ही बैठा रहा। यह कल्पना करके कि मैं सृजनात्मक शक्तियों के किसी स्रोत के पास खड़ा हूँ मैं इतना उद्विग्न था कि अनायास ही उसके पास बैठ गया। दिल की धड़कन की ताल में स्पन्दन करते मेरे विचार बिल्कुल स्वच्छ थे और दिल मेरा नीरवता के संगीत की लय पर धड़क रहा था। पर शीघ्र ही वह क्षण आ गया : लूवेन ने घास हटायी—और मैंने देखा... छोटे-से पतले डण्ठल पर आदमी की खुली हथेली की आकृति जैसी कुछ पत्तियाँ ऐसी कोमल वनस्पति के लिये भोंडे खुरवाला काकड़ ही नहीं बल्कि चींटी तक ख़तरनाक थी, अगर उसे किसी कारण इसकी आवश्यकता होती तो वह कुछ ही देर में इस जीवन को बरसों के लिये रोक सकती थी। इस वनस्पति और मेरे जीवन को पन्द्रह वर्षों में कितने ही संयोगों का सामना करना पड़ सकता था!

चलते समय लूवेन ने मुझे देवदार के तने पर बना निशान दिखाया; इस देवदार से जड़ तक ठीक एक हाथ की दूरी थी और दूसरी ओर से, मखमली पेड़ से भी एक हाथ की दूरी थी, तीसरी ओर बलूत के तने पर निशान बना था और चौथी ओर से कीकर के तने पर।

7

इस बार मैं सींगों के शिकार में अपना भाग्य आजमाने के लिये टैगा वन में गया। उस मौसम में नर चीतलों या काकड़ों का शिकार जब उनके सींग—मृगश्रृंग खून से संचारित होते हैं, अभी अस्थिकृत नहीं हुए होते, सींगों का शिकार कहलाता है। इस शिकार से बड़ी कमाई होती है, कई सींगों का दाम स्वर्ण मुद्रा में एक हज़ार येन से भी अधिक होता है। उस मौसम में जब शिकारी सींगों का शिकार शुरू करते हैं मादाएँ पहाड़ों की तलहटियों में हिरनौटे जनती हैं, पर नर कभी-कभार ही आते हैं, वे झाड़ियों में छिप-छिपकर उत्तरी ढलानों पर ही रहते हैं। अक्सर वे बड़ी देर तक मूर्ति बनकर खड़े रहते हैं शायद इस डर से कि कहीं हल्के से हल्के स्पर्श तक के लिए संवदेनशील श्रृंगों को चोट न लग जाये। धुँधली पहाड़ी जिसकी ओर तब मैं जा रहा था, लगभग सारी की सारी दिखायी दे रही थी, बस उसकी काली चोटी ही धुंध में तैर रही थी। इस पहाड़ी को तीन ओर से समुद्र ने घेर रखा था, वह ठण्डे ज्वालामुखी से काफ़ी मिलती-जुलती थी, शायद वह कुछ समय पहले तक रही भी हो : खाड़ी के तट पर मुझे कई बार झाँवे के टुकड़े मिल चुके थे। निःसन्देह पहाड़ी काफ़ी कटी हुई थी, चारों ओर से उसकी ढलानों में गहरे खड्ड और कन्दर थे। इन कन्दरों में, बेशक, जीव-जन्तु

भी और विशेष, अवशिष्ट वनस्पति भी शरण पाते थे, शिकारियों के लिए मूल्यवान ये सभी कन्दर ऊपर जाकर लगभग बिन्दु पर जुड़े हुए थे और सारी पहाड़ी इन जीव-जन्तुओं और वनस्पति से समृद्ध कन्दरों की गठरी ही थी। अब मैं समुद्र तट पर दक्षिण-पश्चिम में जा रहा था जहाँ धुँधली पहाड़ी के तीन सुन्दरतम कन्दरों—नील, वर्जित और व्याघ्र कन्दर के मुहाने थे। उनमें से हरेक की तली पर, ऊपर से नीचे तक उनकी रचना करने वाले नाले बहते थे। नीचे नाले के किनारे-किनारे, समुद्री दक्षिणी पवन के अलावा सभी हवाओं से बचाने वाली ओट में प्राचीन युगों की अवशिष्ट वनस्पतियाँ सुरक्षित थीं और ऊपर कन्दरों के कगारों पर चंचल पाइन वृक्ष तूफ़ानों से अठखेलियाँ करते थे। समुद्र तट से मैं नील कन्दर के बायें किनारे-किनारे धुँधली पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर धीरे-धीरे कटक पर चल रहा था बाघों और तेंदुओं की तरह ताकि ऊपर से चारों ओर सब कुछ दिखायी दे। नील और वर्जित कन्दरों में मुझे जहाँ-तहाँ हिरण दिखायी दे रहे थे, ये दो-दो, तीन-तीन के समूहों में हिरणियाँ थीं अपने छौनों के साथ। कभी-कभी उनके बीच सींकों जैसे पतले सींगोंवाला हिरनौटा भी दिखायी पड़ता। अचानक उस कन्दर की गहराई से, जिसे बाद में मैंने व्याघ्र कन्दर का नाम दे डाला, मुझे चीत्कार, कराह और फूत्कार सुनायी पड़े। मैं बड़ी तेजी से बिखरे पत्थरों पर दौड़ता हुआ उधर गया, मैं कोशिश कर रहा था कि पत्थर हिलें या गिरें नहीं। छलाँग लगाकर मैं झाड़ियों के बीच पहुँच गया और चुपके-चुपके आगे बढ़ने लगा। शीघ्र ही मुझे झाड़ियों के बीच से कन्दर के दूसरे किनारे पर कोई पीला-सा जानवर दिखायी पड़ा। उसे मेरी भनक पड़ गयी और अनिच्छा, आलस्य के साथ कुलाँचें भरता वह ऊपर की ओर दौड़ने लगा। कभी वह दिखायी पड़ता तो कभी बलूत की झाड़ियों में ओझल हो जाता। मैं बाट जोह रहा था कि वह शैल प्रपात पर पहुँचकर पूरा सामने आये पर वहाँ घास में लेट गया जैसा कि बिल्ली के परिवार के हिंस्र पशुओं की आदत है। पत्थरों के पीछे से केवल आँखें ही दिखायी दे रही थीं। इतनी दूरी पर यह लक्ष्य बन्दूक की मक्खी से छोटा था इसलिए उसे मारना असम्भव था। तब मैंने जल्दी से कन्दर के उस पार जाकर यह देखने की सोची कि आखिर पीले जानवर का शिकार कौन बना। दिशा भ्रम से बचने के लिए मैंने एक अलग पहचानवाले पाइन वृक्ष को याद कर लिया। इस वृक्ष के ऐन नीचे पड़ा एक विशाल पत्थर लटका हुआ था, लगता था कि उसे बस छूने भर की देर है और वह रास्ते में सब कुछ तबाह करता नीचे लुढ़क जायेगा। मेरा विचार था कि इसी पत्थर के पीछे ही खून में लथपथ शिकार पड़ा होना चाहिए। मुझे हाथों के बल लटककर पाइन की नयी पौध को पकड़-पकड़कर वहाँ चढ़ना था। मेरा अनुमान गलत न था, पत्थर के पीछे मुझे श्रृंगी मृग पड़ा दिखायी दिया, उसके श्रृंग इतने भव्य थे और सौभाग्य से, बिल्कुल सही सलामत। मैं लूवेन के मुँह से अनेक बार सुन चुका था कि मृगश्रृंगों का मूल्य उनके वज़न पर इतना नहीं

जितना कि उनकी आकृति पर निर्भर करता है। और आकृति में सबसे बड़ी बात यह है कि बायाँ और दायाँ सींग हूबहू एक जैसा हो। लगता है कि यह कोई अन्धविश्वास या फ़ैशन की माँग नहीं है। हिरण के शरीर के जिस हिस्से में हल्की-सी भी चोट लगती है उस ओर के श्रृंग का विकास दूसरी ओर के श्रृंग से भिन्न होता है। मतलब यह कि अगर श्रृंगों की उपचारक शक्ति मृग के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है तो इसके बारे में उसके सींगों के स्वरूप से पता लगाया जा सकता है।

मैंने पहाड़ी पाइन की जितना बन पड़ा उतनी टहनियाँ तोड़ीं और हिरण को वहाँ पड़ती सूर्य की किरणों से बचाने के लिए उनसे ढक दिया और तेंदुए का सुराग ढूँढ़ने चल पड़ा। वह पत्थर जिसकी ओट में वह पशु छिपा था विराट उकाब जैसा लगता था। मैं कटक के रास्ते लम्बा चक्कर लगाकर वहाँ पहुँचा, पत्थर को पहचानकर सतर्कता के साथ चुपके-चुपके उस ओर बढ़ने लगा। मैं किसी भी क्षण पशु का निशाना साधने को तत्पर था। पर पत्थर के नीचे तेंदुआ अब नहीं था। मैंने किनारे-किनारे सारे पठार का चक्कर लगाया जो शायद कभी ज्वालामुखी का मुख रहा होगा, पर तेंदुआ कहीं भी नहीं मिला। मैं पहाड़ी लिग्नाइट की एक बेहद सपाट, मानो पालिश करके चिकनी की गयी सिल के पास दम लेने बैठ गया और जब मैं उसे सामने से पड़ती धूप में देख रहा था तो इस सिल पर जमी धूल पर सुन्दर पशु के गुदगुदे पंजे का हल्का-सा निशान दिखायी पड़ा। मैंने विभिन्न दिशाओं से उस पर बहुत बार नज़र डाली और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि तेंदुआ इस सिल पर से गया था। बेशक मुझे यह पता था कि बाघ और तेंदुए कटकों पर घूमते हैं और अब इस सिल पर उसके पंजे का निशान देखकर मुझे कुछ नहीं मिला : गया होगा यहाँ से और छिप गया पत्थरों के बीच, पदचिह्नों के बिना उसे ढूँढ़ना असम्भव था। तब मैंने अपनी नज़रें धुँधली पहाड़ी की तलहटी में सुन्दर अन्तरीप की ओर मोड़ीं और उसकी चट्टानों को निहारने लगा जो दक्षिणी कन्दरों के सभी कगारों की तरह सुन्दर और चंचल चीड़ वृक्षों से सजी-धजी थीं। मैं, नीची, पर हिरणों की प्रिय घास से ढके इस संकरे अन्तरीप पर चरती हिरणी को यहाँ से देख सकता था, उसके पास झाड़ी में पीला घेरा-सा पड़ा था, यह अनुमान लगाना कठिन न था कि यह हिरनौटा था। अचानक वहाँ, जहाँ लहरें धौले फव्वारे छोड़ती अपनी पहुँच से बाहर खड़े गहरे हरे पाइनों को छूने की कोशिश कर रही थीं, एक उकाब उड़ा, अन्तरीप के ऊपर ऊँचाई पर मंडराते हुए उसकी दृष्टि हिरनौटे पर पड़ गयी और वह झपट पड़ा। पर माँ ने विशाल झपटते पक्षी का शोर सुन लिया और झट से मुक़ाबला करने को तैयार हो गयी। वह अपने छौने के सामने पिछली टाँगों पर खड़ी हो गयी और अगली टाँगों से उकाब को मारने का प्रयास करने लगी और वह अप्रत्याशित विघ्न से तिलमिलाकर तब तक हमला करता रहा जब तक कि पैना खुद उसे न लग गया। चोट खाकर उसने बड़ी कठिनाई से अपने को सम्भाला और पाइनों

की ओर वापस उड़ चला जहाँ शायद उसका घोंसला था। लगभग दोपहर का समय हो चुका था, गर्मी बढ़ती जा रही थी; इस पहर में हिरण खुली चरागाहों से शाम तक अपने स्थायी निवास क्षेत्रों में चले जाते हैं और कन्दरों में छायादार पेड़ों के बीच छिप जाते हैं। अन्तरीप पर एकमात्र इस हिरणी ने भी अपने हिरनौटे को उठाया और उसे लेकर उकाब घोंसला अन्तरीप से सीधे उस खड्ड की ओर चल पड़ी जहाँ हमारी फ़ान्ज़ा थी। मुझे इसमें लगभग कोई सन्देह न था कि यह 'हुआ-लू' ही थी और मेरे मन में महासागर की दौड़ती लहरों पर झिलमिलाती धूप-छाँव की तरह कितने ही विभिन्न भाव उमड़ पड़े! पर अचानक मेरे इन भावों को एक विचार ने निःस्पन्द कर दिया जिसने बाद में इस प्रदेश से मेरी सारी गतिविधियों को निश्चित किया। "उकाब घोंसला अन्तरीप से हिरणों के निकलने का कोई रास्ता नहीं," मैंने सोचा, "सिवाय सँकरे, कोई सौ मीटर चौड़े थलडमरूमध्य के और अगर इस थलडमरूमध्य को खूँटों की बाड़ से बन्द कर दिया जाये तो हिरण के लिए सिर्फ एक रास्ता बचता है—खड़ी चट्टान से समुद्र में कूदे और तैरकर तट पर जाये। पर यह भी कोई रास्ता नहीं हुआ : नीचे पानी में नुकीले पत्थर कभी दिखायी देते हैं तो कभी जलमग्न हो जाते हैं, और कोई भी प्राणी इन भंयकर पत्थरों पर गिरकर मौत के मुँह में समा जायेगा।" तो यह विचार मेरे दिमाग में आया और अनजाने ही वह मेरे रोम-रोम में भरता गया। दम लेकर मैंने सावधानी के साथ एक बार फिर हरेक पीले-ललौंहे धब्बे को गौर से देखते हुए, पठार का चक्कर लगाने का फैसला किया : क्या पता इस दौरान उस पशु ने कोई मंसूबा बना लिया हो... मुझे दिखायी पड़ रहा था कि कैसे जहाँ-तहाँ हिरणियाँ अपने छौनों को चरागाहों से अपने-अपने खड्डों में ले जा रही थीं या बस वहीं, चरागाहों के पास बलूत की झाड़ियों में आश्रय ले रही थीं। कितनी ही बार मुझे यह देखने का मौका मिल चुका था कि पेड़ चाहे कोई खास घना न भी हो पर उसकी छाया में घुसकर चीतल अपनी रक्षात्मक चित्तियों की बदौलत अदृश्य हो जाता था। यहाँ छाया में वे कभी अंगूर की पत्तियाँ चबाकर, कभी अपनी पिछली टाँग के खुर से खुजाकर आततायी किलनियों को निकालते हुए वक्त काटते। मुझे तेंदुआ कहीं भी नहीं दिखायी पड़ा और घूमघामकर मैं उसी सिल के पास पहुँचा और फिर से वहीं बैठ गया। बैठे-ठाले में फिर से तेंदुए के पंजे के निशान को जाँचने लगा और अचानक मुझे पहले निशान के पास दूसरा, और भी स्पष्ट निशान दिखायी पड़ा। और तो और सामने की धूप में देखने पर दूसरे निशान में मुझे दो सुइयाँ-सी दिखायी दीं, उनमें से एक को उठाकर मैं तेंदुए के पंजे के बाल को पहचान गया। बेशक, पठार के मेरे दूसरे चक्कर के दौरान सूर्य सरक गया था और उसकी किरणें सिल पर अब दूसरे कोण से पड़ने लगी थीं और मैं यह मान सकता था कि तब मैं दूसरे निशान को नहीं देख पाया और बालों को देखे बिना तब नहीं रह सकता था—बाल दूसरे चक्कर के समय ही वहाँ आये,

इसका मतलब यही हुआ कि तेंदुआ चुपके-चुपके मेरा पीछा कर रहा था। यह तेंदुओं और बाघों के बारे में सुनी बातों के अनुरूप ही था : अपना पीछा करने वाले आदमी की पीठ पीछे पहुँचना, उनकी बँधी-बँधायी चाल है।

अब समय गँवाने का वक़्त नहीं था। मैं उकाबों को छिपे हिरण की भनक पड़ने से पहले जल्दी-जल्दी लूवेन के पास गया, सौभाग्य से वह मुझे घर पर ही मिला, और मैंने उसे श्रृंगी मृग के बारे में बताया जिससे वह बड़ा खुश हुआ। हम सीधी चढ़ाई वाले कन्दर के जरिए छोटे रास्ते से उधर गये। वहाँ चोटी पर लूवेन और मैंने चुपचाप एक-एक पत्थर को गौर से देखते हुए सारे पठार का चक्कर लगाया और उस सिल के सामने, अपने निशान छिपाने के इरादे से मैं लम्बी लाठी की मदद से नीचे कूद गया, एक बार और कूदकर मैं पास वाली झाड़ी में जा छिपा, हवा का रुख मेरी ओर था। लूवेन कटक पर आगे चलता जा रहा था और मैं पत्थरों पर कोहनियाँ और रायफल की नाल टिकाकर इन्तजार करने लगा। कुछ देर बाद आकाश की नीली पृष्ठभूमि में मुझे रेंगते पशु की काली आकृति दिखायी पड़ी। भीमकाय बिल्ली इस बात से बिल्कुल बेखबर रेंगती जा रही थी कि मैं पत्थर की ओट से रायफल के लक्षक के बीच से उसको देख रहा था। लूवेन अगर मुड़कर पीछे देखता भी तो शायद ही वह कुछ देख पाता। तब तेंदुआ रेंगता हुआ सिल पर चढ़ गया, वह रुककर एक बड़े पत्थर के ऊपर से लूवेन को देखने के लिए थोड़ा-सा उठा, मैं तैयार हो गया। लगता था कि दो की जगह एक आदमी को देखकर तेंदुआ पसोपेश में पड़ गया, वह मानो परिवेश से पूछ रहा था : "पर दूसरा कहाँ है?" और जब चारों ओर पूछताछ करके उसने सन्देह के साथ मेरी झाड़ी की ओर देखा मैंने रायफल की मक्खी उसकी नाक के बांसे पर टिका दी और साँस रोककर गोली चला दी। पशु पंजों के बीच सिर रखकर लेट गया, उसकी पूँछ ने कुछ हरकत की और अब सब कुछ ऐसा ही लग रहा था मानो वह अपनी भाग्य निर्णायक छलाँग लगाने के लिए घात में बैठ गया हो।

हमें कितना बढ़िया कालीन मिल गया, पर लूवेन इस बहुमूल्य खाल को पाकर खुश नहीं था। उसकी रहस्यमय, असंख्य अन्धविश्वासों से मिश्रित हकीमी में तो तेंदुए के दिल, जिगर और मूँछों तक की कोई महत्वपूर्ण भूमिका थी। पर जब उसने मरे हिरण के सींग देखे तो वह इन बहुमूल्य चीज़ों के बारे में भूल ही गया।

"भौत-भौत दवा होना माँगता!" कपाल से मस्तक की हड्डी समेत सींग काटते हुए वह बोला।

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि वह सींगों को जड़ों से काटने के बजाय माथे की हड्डी समेत क्यों काट रहा है, उसने कहा :

"इस तरह मेरा तिगुना दवा लेना माँगता।"

पता चला कि अगर मृगश्रृंगों को मस्तक की हड्डी समेत काटा जाये तो उनका दाम

दुगना, तिगुना होता है। वे सामान्य, जड़ से कटे मृगश्रृंग केवल उपचार के लिए दवा के काम ही आते पर मस्तक की हड्डी समेत सींग—खिलौना, उपहार, पारिवारिक सुख की जमानत माने जाते हैं और सबसे अमीर चीनी घरों में वे काँच के केस में सुरक्षित रखे जाते हैं, और जब कालान्तर में इन श्रृंगों की आकृति के सिवा कुछ न बचेगा, तो उनका यह दिखावटी रूप, यह करकट मालिक को उसके बुढ़ापे में जवानी का जोश लौटाने की आशा दिलाया करेगा।

"ये घूमो-घूमो सींग हैं," लूवेन बोला, "और इनके बदले भौत दवा मिलेगा।"

विशेष रूप से मूल्यवान जिन्सेंग की तरह घूमो-श्रृंग भी तब तक बहुत हाथों से गुजरेंगे, उनका दाम बढ़ता ही जायेगा, वे अनेक "सौद" के यहाँ जायेंगे जब तक कोई सबसे धनवान और शातिर "उचक" अन्ततः उन्हें सबसे शक्तिशाली मन्दरिन के पास ले जाकर चुपके से उसकी बायीं चौड़ी आस्तीन में नहीं ठूँस देगा और तब मन्दरिन दायें हाथ से "सौद" के लिए कोई फायदे का काम कर देगा।

"मन्दरिन भी उचक होते हैं? मैंने पूछा।

"मन्दरिन ऐश उड़ाना माँगता," लूवेन ने उत्तर दिया।

हमने अपने कन्धों पर हिरण का मांस लादा, उसकी चित्तीदार छाल, बहुमूल्य श्रृंग, तेंदुए का कालीन, दिल, जिगर और मूँछें उठा लीं और चल पड़े। धुँधली पहाड़ी से उतरते समय जब हम उकाब घोंसले के सामने थे मेरी नज़र संयोग से उधर मुड़ गयी और मैंने वहाँ देखा... मेरा विचार जो पिछले घण्टों में अन्दर ही अन्दर पूरे ज़ोर से उमड़-घुमड़ रहा था अब अपने समर्थन के लिए आवश्यक बहुमूल्य सामग्री पाने के कारण स्पष्ट हो गया, मैं खुद भी आश्वस्त हो गया और अचानक मेरा मन हल्का हो गया।

और देखा मैंने वह था जो लूवेन ने भी यहाँ अपने प्रवास के तीस वर्षों में अनेक बार देखा था। मैंने देखा कि कैसे पुष्प-मृग थलडमरूमध्य को पार करके उकाब घोंसले की चरागाह में जा रही है।

इशारे से लूवेन को हिरणी दिखाते हुए मैंने उसे स्थायी रूप से बहुत-बहुत दवा कमाने की सीधी-सादी योजना बता दी और वह बेहद प्रसन्न होकर बोला :

"अच्छा, अच्छा, कप्तान!"

यह मेरे लिए दीर्घ चिन्तन-मनन की सामग्री थी और अब तक मैं अन्तिम रूप में इस प्रश्न को नहीं सुलझा पाया कि क्यों उसी क्षण से लूवेन ने मुझे हमेशा कप्तान कहकर पुकारना शुरू कर दिया जब मैंने उसे अपनी इस छोटी-सी खोज के बारे में बताया था?

8

किसी प्रकार लूवेन ने सुन्दर फ़ेज़ेंट को पकड़ लिया और मुझे दिखाने के लिए लाया।

'चलो, खायेंगे इसे," मैंने कहा, क्योंकि मैं जानता था कि मंगोलियाई फ़ेज़ेंटों का सफ़ेद गोश्त कितना उम्दा होता है।

"खाना, अच्चा-अच्चा, कोंत्रामी* नहीं कर सकता, कप्तान!"

मैंने झट से फेज़ेंट का सिर काट दिया। वह बोला :

"अच्चा, कप्तान!"

और पंख नोचने लगा। फिर हमने चावल डालकर शोरबा बनाया और साथ मिलकर खाने का आनन्द लेने लगे।

बेशक, फ़ेज़ेंट का सिर काटना बहुत मुश्किल काम होता है पर फिर भी, इस विषय में सोचते हुए कि क्यों अचानक मैं ही लूवेन के लिए कप्तान बन गया, मैं बाकी सामग्री में इस छोटे-से काम को भी जोड़े बिना नहीं रह सकता था : अर्थ यह निकलता था कि कप्तानों का गुण खोजें-अन्वेषण करना ही नहीं बल्कि सिर काटना भी था। शायद जब लूवेन टैगा में आया होगा तब वह वैसा गम्भीर और प्रशान्त न रहा होगा जैसा वह जीवन की जड़ की खोज के दौरान हो गया था। कभी वह चीनी बहेलियों के साथ भयंकर चीनी छल के सहारे हिरणों, काकड़ों और जंगली बकरियों को पकड़ता था : पेड़ों को इस रह गिराकर कि उनकी जड़ें आपस में सटी रहें, कहीं-कहीं रास्ता छोड़ देता था जानवरों के भागने के लिए, और यहीं इन खुले स्थानों पर टहनियों से ढके गड्ढे होते थे और जानवर उनमें गिर पड़ते थे, इस तरह गिरने से अकसर उनकी टाँगें टूट जाती थीं। लूवेन बर्फ़ की कड़ी पपड़ी पर अपने छोटे-से कुत्ते के साथ हिरण का शिकार करता था, कुत्ता उसका इतना खूँख्वार था कि वह हिरण की बगल में दाँत गड़ाकर उसके साथ तब तक घिसटता जाता था जब तक कि बर्फ़ की कड़ी पपड़ी से पाँव घायल करके हिरण रुक न जाता। ऐसे छोटे-छोटे कुत्तों की मदद से चीनी हिरणों को बर्फ़ की पपड़ी से समुद्र में खदेड़ने की कोशिश करते और वहाँ अपनी नौकाओं में बैठे-बैठे उन्हें पकड़ते और पानी ही में उन्हें रस्सियों से जकड़ देते। पकड़े हुए हिरणों को तब तक पालते जब तक उनके सींग न निकल आते और फिर मूल्यवान मृगश्रृंग काटकर उन्हें हलाल कर देते मांस के लिए। पर अब उस समय की कल्पना करना ही कठिन था जब लूवेन दूसरे चीनी बहेलियों के साथ दुर्लभ और मरणोन्मुख जन्तुओं का इतनी निर्दयता के साथ संहार करता था, वह भी केवल धनवानों के लिए घूमो-श्रृंग जुटाने की खातिर। तो टैगा में उसने अपना जीवन बहेलिये के रूप में शुरू किया था और, निःसन्देह, वह जीव-जन्तुओं के निशानों को बहुत ही अच्छी तरह समझ सकता था, तथा निशान देखकर ही वह जीव-जन्तुओं के इरादे भाँप सकता था, अरे, वह खुद

* कोंत्रामी—सिर काटना।—लेखक

भी जानवरों की तरह सोच तक सकता था। पर मुझे टैगा के इस अन्वेषक के अनुभव पर वैसा श्रद्धापूर्ण आश्चर्य नहीं होता था जिसके साथ कुछेक ऐसे अन्वेषकों के बारे में बताते हैं। मैं तो एक रसायनशास्त्री होने के नाते कुल मिलाकर टैगा के इन सभी अन्वेषकों की अपेक्षा हज़ार गुना अधिक शक्तिशाली अन्वेषक था। मेरे लिए इन जंगली अन्वेषकों का यह ज्ञान है ही क्या, जब मैं किसी भी पदार्थ का गुणात्मक रासायनिक विश्लेषण कर सकता हूँ और उसके तत्वों की मात्रा का हज़ारवें अंश तक अनुमान कर सकता हूँ! यही नहीं, मैं रसायनशास्त्र की तरह किसी भी अन्य क्षेत्र में अपने सूक्ष्म ध्यान को मोड़ सकता हूँ और अल्प अवधि में ही किसी भी ऐसे अन्वेषक को पिछाड़ सकता हूँ जिसने अपने सारे जीवन को किसी एक काम में निजी अनुभव अर्जित करने में ही बिता दिया। नहीं, टैगा के जीवन के प्रति लूवेन का यह सूक्ष्म ध्यान मुझे चकित नहीं करता था, बल्कि सगेपन का वह ध्यान जो वह प्रकृति के प्रत्येक प्राणी के प्रति दर्शाता था। मुझे इस पर आश्चर्य नहीं होता था कि वह टैगा के जीवन को समझ सकता था बल्कि इस पर कि लोक में वह हर चीज़ को सजीव बनाने में समर्थ था। शायद उसके जीवन में ऐसा कोई गहरा मोड़ आया था जिसके कारण उसने अपना निर्दय व्यापार त्याग दिया और जानवरों को फँसाने के इस वहशी, जीवन का नाश करने वाले काम के बदले जीवन की जड़ की खोज करने लगा। मन का मंथन करने वाले कुछ ऐसे भाव होते हैं जिनके बारे में न कभी बताना उचित होता है न पूछना : अपने आप में वे कुछ ज़्यादा नहीं कहते। मानव अपने कार्यों से अपने इन गहन भावों के बारे में बताते है और दूसरा मानव, उसका मित्र, इन कार्यों को देखकर अपने आप सब समझ जाता है। मुझे पता था कि लूवेन के कन्धों पर अपने भाई के बड़े परिवार का बोझ था, मैं अक्सर सोचता हूँ कि कुटुम्ब की सम्पत्ति के बँटवारे में उसके साथ किये गये अन्याय का बेहद बुरा मानकर लूवेन सगे भाई का जानी दुश्मन बनकर टैगा में चला आया होगा। हो सकता है कि अपने आखेटी जीवन के पहले दस वर्ष उसने अपने पिता को, जो उसे निखट्टू समझता था, सिर्फ यह सिद्ध करने में बिता दिये कि वह अपने श्रम से भाई की तुलना में बेहतर जीविका कमा सकता है। और समय आने पर, पिता के लिए इसका प्रमाण और भाई के लिए तिरस्कार लेकर चीन पहुँचा, पर वह रहा ही नहीं जिसे कुछ सिद्ध करता और तिरस्कार किये जाने के काबिल भी कोई न रहा। किसी भयानक अकाल के बाद, जैसा कि चीन में अक्सर होता रहता है, लूवेन की केवल भाभी अपने ढेर सारे बच्चों के साथ जीवित बची। हो सकता है कि तभी से लूवेन बदल गया हो। पहले वह सिद्ध करने की खातिर जीता था पर अचानक कोई रहा ही नहीं जिसे वह कुछ सिद्ध करके दिखाता, बाद में चीनियों से मैंने ऐसे ढेरों किस्से सुने। अगर मैंने लूवेन के मुँह से उसकी रामकहानी सुनी होती तो फिर भी वह मुझे फ़ान्ज़ा के पास लूवेन के हाथों कभी रोपे गये दो विशाल पोपलरों से अधिक न

बता पाती। कितनी खुशी के साथ वह उनसे मिलता था, उनकी हरियाली में बैठे उसकी बाट जोहते विभिन्न प्राणियों से वह हमेशा बुदबुदाकर न जाने क्या-क्या चीनी शब्द कहता! उसका प्यारा कौआ हमारे रूसी कौओं जैसा सलेटी नहीं बल्कि काला था। पहली नज़र में देखने पर लगता : "अरे यह तो रुक है!" पर फिर गौर से देखने पर याद आता कि रुक की तो चोंच सफ़ेद होती है पर इसकी काली है। "अच्छा, तो यह रैवन है!" पर अचानक यह काला रैवन हमारे यहाँ के सलेटी कौए की तरह काँय-काँय करने लगता। बेहद अक्लमन्द था वह, जब लूवेन टैगा को जाता तो कौआ बड़ी दूर तक एक पेड़ से दूसरे पर उड़कर बैठता उसे विदा करता। पेड़ पर नीली मैगपाई भी और माकिंगबर्ड, कौड़िल्ली, चिलबिलें, पीलक, कोयल भी रहती थी, बटेर भी आकर झाड़ियों में चिल्लपों मचाती। पर उसकी आवाज़ हमारी बटेरों से भिन्न होती। इसी तरह सारे के सारे पक्षी देखने में हूबहू हमारे यहाँ जैसे लगते, देखकर फौरन पहचान में आ जाते पर छोटी ही सही पर कुछ न कुछ बात उनमें वैसी न होती। मैना भी काली होती, चोंच भी पीली होती, पंखों पर भी वैसी इन्द्रधनुषी आभा खेलती, जैसे ही गाने की तैयारी करती फूल कर कुप्पा हो जाती, लगता कि बस अभी वह जैसे हमारे यहाँ की, वसन्त में चहचहाती हैं वैसे ही चहचहायेगी और उसे सुनने की आकुलता से प्रतीक्षा होने लगती है पर प्रतीक्षा निष्फल होती है : खर्र-खर्र के सिवा कुछ नहीं सुनने को मिलता। और कोयल कू-कू नहीं, के-के करती। रोज़ सवेरे लूवेन उनके साथ बातचीत करता, उन्हें दाना डालता और मुझे यह मैत्री और सभी प्राणियों के प्रति सगों का सा य॰ व्यवहार बहुत अच्छा लगता। मुझे विशेषकर अच्छा लगता था कि लूवेन यह किसी स्वार्थ की खातिर या दूसरों को सदाचार का उदाहरण दिखाने के लिए नहीं करता था, यह सब वह अपने सहज स्वभाव से करता। और जब फ़ेज़ेंट उसके हाथ लगा, निःसन्देह, उसको खाना चाहिए था, पर यह कैसे करे अगर इसके लिए "कोंत्रामी" ज़रूरी था? और वह दूसरे व्यक्ति से, कप्तान से "कोंत्रामी" का अनुरोध करता है जो यह करने में अधिक समर्थ है। पर, वह यह जानकर कितना प्रसन्न हुआ खुद कप्तान सुन्दर, मरणोन्मुख जीव के संहार से क्षुब्ध होता है, कि वह उसकी रक्षा करने और उसे पालने का इच्छुक है।

मेरी योजना को कार्यान्वित करने के लिए हमने, यहीं, अपने खड्ड में ढेरों लताएँ-बेलें काटीं और इन रस्सियों को आग की धूनी दी ताकि जानवर दूर ही से धुएँ की इस कालिख की गंध को महसूस करके उसमें मानव के घातक मंसूबों को पहचान लें और डरकर रहें। यहीं हमने एक स्लेज बना डाली ताकि इन बेलों को उस पर लादकर एक आदमी अकेला ले जा सके। पौ फटने से बहुत पहले ही मैं धुँधली पहाड़ी पर पहुँच चुका था, जब पुष्प-मृग अपने हिरनौटे के साथ उकाब घोंसला अन्तरीप पर ले गया, मैंने संकेत देने के लिए अलाव जला दिया। इसके बाद मैं आधी ढलान भी न उतर

पाया था कि लूवेन ने थलसंयोजक पर मोर्चा सम्भाल लिया और माँ-हिरणी के भाग्य का फैसला हो चुका था : सीधे किसी आदमी की ओर जाने का साहस करने के बजाय उसके लिए सागर की नुकीले चट्टानों पर कूदना कहीं आसान था, वह कैद में बन्द हो गयी थी और इस क्षण से उकाब घोंसला अन्तरीप दुनिया का सबसे सुन्दर चट्टानी जन्तु उद्यान बन गया था। हम रात तक थलसंयोजक की चौड़ाई में बेलों से बनी अपनी धूनी दी गयी रस्सी को तानते रहे। सुबह को पत्थरों के पीछे छिपकर हम उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे जब हिरण चरागाहों से खड्डों-घाटियों में अपने-अपने छायादार घरों को चले जाते हैं। हमने देखा कि पुष्प-मृग चट्टान पर हिरणों की पगडण्डी पर शान्ति से, बाहर निकलने के रास्ते की ओर चली आ रही है। कल उस पगडण्डी से हम खम्भों के लिए एक पाइन वृक्ष काटने के वास्ते अन्तरीप पर गये थे।

हिरणी हमारे निशानों तक पहुँचकर ठिठकी, उसने नथुने फुलाये, उसे नीचे से कोई बू आयी और उसने सिर झुकाया। फिर उसने सिर ऊँचा उठाया, हवा में हमारी धूनी दी गयी बेलों की गन्ध पाकर उसने उस स्थान को घूरा जहाँ हम बैठे थे, उसे खतरे का विश्वास हो गया ओर वह सीटी बजाकर उल्टे पाँव दौड़ पड़ी और उसके पीछे-पीछे बलूत की झाड़ियों में, माँ के सफ़ेद दुंबे पर नज़रें गड़ाये हिरनौटा भी फुदकने लगा।

अब मुझे विश्वास हो गया था कि यह हिरणी मेरी 'हुआ-लू' ही थी : उसके बायें कान में आर-पार छेद चमक रहा था। उसकी नज़रों से विदा करके हम प्रसन्नचित्त अपनी ओट से निकले और फौरन बाड़ बनाने के दैनिक काम में जुट गये। इस प्रकार मैं, प्रशिक्षित यूरोपवासी, चीनी की नज़र में—झट से सब कुछ समझने, नयी-नयी चीज़ें सोच निकालने और आकस्मिक खोजें करने में समर्थ कप्तान और जिन्सेंग का यह वृद्ध खोजी स्वेच्छा से एक हो गये जिसे न केवल टैगा और जीवजन्तुओं का ज्ञान था बल्कि उन्हें खूब अच्छी तरह समझना भी और टैगा में उनके परिवेश से अपने को सगों की तरह जोड़ना भी आता था। सच्ची मानवीय सभ्यता के नज़रिये से उसे मैं अपने से बड़ा मानता था और उसका आदर करता था। वह शायद मुझमें एक गोरे यूरोपवासी को देखता था और मेरे साथ उसका व्यवहार वैसा ही हर्ष मिश्रित आश्चर्य और सौहार्दपूर्ण मैत्री का था जैसा बहुत-से चीनी यूरोपवासियों के साथ करते हैं, अगर उन्हें यह पक्का यकीन हो कि यूरोपवासी उन पर अत्याचार नहीं करना और उन्हें धोखा नहीं देना चाहते। उस समय, बेशक, मुझे इसका तनिक भी आभास न था कि उस काम की परिणति क्या होगी जिसका सूत्रपात हमने किया, कि हवाई जहाजों और बेतार की ही तरह यह भी बिल्कुल नयी चीज़ है। जंगली पशुओं को पालतू बनाने का काम लोग मानव सभ्यता के केवल उषाकाल में ही करते थे और कुछेक प्रकार के पशुओं को पालतू बनाकर न जाने क्यों उसे छोड़ दिया और जीवन का एक ढर्रा बनाकर पालतू पशुओं के साथ रहने लगे और जंगली जानवरों को मारने लगे। हम अब तक संचित

विपुल ज्ञान से सम्पन्न होकर इसी काम को फिर से शुरू कर रहे थे, और निःसन्देह, हम भिन्न लोग थे, और मानव सभ्यता के उषाकाल में वहशियों द्वारा शुरू किये गये धंधे को भिन्न ढंग से लगाया जाना था।

9

साइबेरिया की साँस हमारी ओर आने लगी थी और उपोष्ण दक्षिणी तटवर्ती प्रदेश साइबेरिया का परिधान पहनने लगा। पहाड़ों में सब के सब जुगनूं कभी के गायब हो चुके थे। फ़ेज़ेंट बड़े होकर तूफ़ानों की कंघी से कढ़ी बलूत की झाड़ियों और अन्य घने झुरमुटों में बनी अपनी अभेद्य शरणस्थलियों से बाहर निकल आये। प्रातःकालीन पाले के स्पर्श से अंगूर की पत्तियाँ लाल हो गयीं, अंगू वृक्ष पर सोना चढ़ने लगा। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि निरन्तर छाया रहने वाला कोहरा छँट गया और जिस तरह हमारे यहाँ वसन्त में सूरज प्रकट होता है वैसा यहाँ पतझड़ में प्रकट हुआ—और वह भी कैसा! सूरज यहाँ ठीक वैसे चमक रहा था जैसे इटली का सूरज चमकता है और इस धूप में साइबेरियाई पतझड़ हमारी सामान्य जलवायु के वसन्त के सभी फूलों से कहीं अधिक आभा और भड़क के साथ खिल उठी। सितम्बर की एक पहली तुषारित सुबह को टैगा में काकड़ की चिंघाड़ सुनायी पड़ी, एक बार चाँदनी रात को अपनी फ़ान्ज़ा में लूवेन और मैंने चिंघाड़ सुनी और फिर तड़-तड़ सींगों के टकराने की। एक बार की बात है : कहीं काकड़ चिंघाड़ा, दूसरी ओर से किसी का लगभग काकड़ जैसी आवाज़ में उत्तर गूँजा। लूवेन ने पहले और दूसरे काकड़ की चिंघाड़ों में सूक्ष्मभेद को भाँप लिया। बाघ भी मानो काकड़ की नकल कर सकता है और आदमी भी भुर्ज की छाल के बिगुल की मदद से मतवाले काकड़ को फुसलाकर अपने पास बुलाता है। लूवेन ने कहा कि दूसरा बाघ या आदमी होना चाहिए। हम कान लगाकर सुनने लगे कि कौन चिंघाड़ा था—बाघ याआदमी। शीघ्र ही पहली चिंघाड़ दूसरी, स्थिर चिंघाड़ के अधिकाधिक पास, निकट ही निकट आने लगी और फिर निःस्तब्धता छा गयी। काकड़ चुपचाप पास आ रहा था बस कभी-कभार किसी टहनी के चटखने की हल्की-सी आवाज़ आ रही थी। बाघ मैदान के छोर पर घात में लेट गया और अपनी घातक छलाँग लगाने की तैयारी करने लगा। आदमी ने दुनाली के घोड़े चढ़ाये और चौपाये की नकल करते हुए जान-बूझकर कोई टहनी चटखा दी। इस भयंकर प्रश्न को अपने में समाये टैगा ने भयावह मौन धारण कर लिया था : बाघ या आदमी? और अचानक रायफल की स्पष्ट गरज ने निःस्तब्धता को भेद दिया। फैसला आदमी ने कर दिया।

शीत-निद्रा में डूबने से पहले चमचमाती धूप की चटकीली आभा से दमकते वृक्ष

और कामुकता की पीड़ा झेलते पशु की यातनापूर्ण चिंघाड़–देखा, कैसा होता है मृगों का प्रेम! एक बार झाड़ियों में मुझे उलझे सींगोंवाली दो खोपड़ियाँ पड़ी मिलीं। दो अष्टश्रृंगी पहलवान काकड़ों ने मादा को पाने के लिए द्वन्द्व में अपनी जानें गँवा दीं और किसी कमीने की चाँदी हो गयी–हम लोगों के बीच भी ऐसी बात को देखकर क्या बुरा नहीं लगता?

हर दिन के साथ सुबह पाले का ज़ोर बढ़ता ही जा रहा था, पहाड़ी नरकट प्रातः धवल तुषार के मखमली परिधान में प्रकट होता और जब सूरज उग आता तो वह ओस में नहाया चमचमाती बूँदों से ढक जाता। कुछ ही दिनों की देर है और तुषार प्रातःकालीन सूर्य से डरना छोड़ देगा और धूप में उसके कण पानी की बूँदों से कई गुना अधिक चमकेंगे। काकड़ों की मस्ती के दिनों चीतल मृग अपने यातनापूर्ण संगम काल की तैयारी में जुट जाते हैं। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों में मैं टैगा में अनेक बार देख चुका था कि श्रृंगी मृग कितने सब्र और ध्यान के साथ अपने अब अस्थिकृत हुए मजबूत सींगों को किसी पेड़ के तने से रगड़-रगड़कर उन पर बचे बाल झाड़ते थे। जितने में काकड़ चिंघाड़ते फिरते हैं उतने में वे द्वन्द्व की तैयारी करते हैं और जब पाला पकते अंगूर को अच्छी तरह जकड़ लेता है और वह मीठा हो जाता है चीतल मृग चिंघाड़ना शुरू कर देते हैं।

अपने चीतल फार्म के लिए हमें श्रृंगियों की आवश्यकता थी और लूवेन के साथ हम भी इस काल की तैयारी करने लगे। हम 'हुआ-लू' को अपने से हिला लेना चाहते थे ताकि संगम ऋतु में उसे छोड़ा जा सके और जब उसकी खातिर नर हिरण द्वन्द्व करने लगेंगे तो हम उसे भुर्ज की छाल से बना हिरण बिगुल बजाकर वापस बुला सकें, हमें आशा थी कि अपनी कामवासना से पागल नर हिरण उसके पीछे दौड़े-दौड़े हमारे यहाँ आ जायेंगे। हमारी मुसीबत यह थी कि उस साल उकाव घोंसले की चरागाह में हिरणों की पौष्टिक घास की भरपूर फसल हुई थी और 'हुआ-लू' उसी से सन्तुष्ट थी, वह न हमारी पूलियों की ओर ध्यान देती थी जिन्हें हमने हिरणों के सबसे प्रिय पेड़ों की टहनियों से बनायी थीं, न मकई और सोयाबीन के दानों की ओर। पहाड़ी नरकटों की बुहारियों के बीच, जो अब बिल्कुल पीले पड़ चुके थे वह छोटी-सी घास ढूँढ़ लेती जो हमें पीले चरागाह में नज़र न आती थी, दिनचर्या उसकी सीधी-सादी थी : कभी वह झुककर इस हरी घास को नोचती, तो कभी पेड़ की छाया में बुत बनकर खड़ी हो जाती, हिरनौटे को दूध पिलाती, कभी-कभी लेटकर अपने और हिरनौटे के बदन से खून चूसनेवाली किलनियाँ निकालने की कोशिश करने लगती। आखिर को एक दिन मुझे ये देखकर कितनी खुशी हुई कि मेरी गन्ध पाकर वह पहले की तरह भागी नहीं, बल्कि कुछ दूर तक उस रास्ते पर चलती गयी जहाँ से मैं गुजरा था, मानो उसे यह जानने का कौतूहल था कि मैं कहीं पास ही में छिपकर तो नहीं बैठा हूँ। और जब उसने मुझे देखा

तो हिरणों की तरह सिर पर पाँव रखकर दौड़ी नहीं बल्कि बस झटके से मुड़ी और अपने हिरनौटे के साथ धीरे-धीरे वहाँ से चली गयी। दूसरी बार की बात है, जब उसे मेरी गन्ध मिली और मैं भुर्ज की छाल का बिगुल बजाने लगा तो वह मुझे देखकर खड़ी हो गयी और बड़ी देर तक सुनती रही। वह यह समझने की कोशिश कर रही थी कि माजरा क्या है, पर स्वाभाविक ही था कि वह कुछ समझी नहीं और उसने खुर पटककर सीटी मारी और धीरे-धीरे चली गयी, शायद उसका मानना था कि पहले की तरह यही बेहतर रहेगा। रोज, बिला नागा मैं उसके लिए बिगुल बजाता था और बस इतनी ही सफलता मुझे मिली कि वह बाजे को सुनकर चरना छोड़ देती और बिगुल की आवाज़ की ओर तब तक बढ़ती रहती जब तक मैं उसे दिखायी न दे जाता, फिर खड़ी होकर बड़ी देर तक सुनती रहती। जब तक मैं बिगुल बजाता रहता वह खड़ी रहती और उसका छौना थन चूसने लगता, कुछ करने को तो होता नहीं उसके पास। पर पहली गरमी में मैं उसे बिगुल की आवाज़ सुनकर मेरे बिल्कुल पास आना नहीं सिखा पाया।

इस बीच पाला, चाहे बहुत हल्का ही सही, सभी पत्तों को सुखाकर रँगने लगा। छोटी पत्तियों वाले मैपिल पर लपटों जैसी लालिमा छा गयी, मंचूरियाई अखरोटों के बड़े-बड़े दिलेर पत्ते पीले रंग में रँगने लगे। और अब जुसुखे के तट के भी क्या कहने, जहाँ मैंने 'हुआ-लू' को पहली बार देखा था, पिछली टाँगों पर खड़ी धूप में पन्ने की तरह चमकती अंगूर की पत्तियों को खाते! वहाँ, जहाँ गरमी में अंगूर की लताओं से लिपटे पेड़ों का पूरा का पूरा हरियाला गाँव बसा था, ये सब कुटियाँ अब अंगूर से लाल हो गयी थीं और उस हरे मण्डप में जहाँ मुझे अपनी भाग्य निर्णायक घड़ी बितानी पड़ी थी, अपने लाल और पीले रंग के कारण अलग ही दिखायी देता था। पहले लगता था अंगूर ने किसी पेड़ का बिल्कुल ही दम घोंट दिया पर अब दिखायी देने लगा था कि अंगूर की लताओं की हरियाली के नीचे भी पेड़ को पर्याप्त रोशनी मिल जाती थी और वह ज़िन्दा था। मंचूरियाई अखरोट का यह पेड़ अब अंगूर की लाल पत्तियों के बीच से अपना सोना चमका रहा था और जिधर देखो उधर कहीं लाल पृष्ठभूमि में तो कहीं पीली में हल्का-सा पाला खाये अमूरी अंगूर के काले गुच्छे लटके थे।

एक बार रात को लूवेन ने मुझे जगाया और बाहर आने को कहा। उसने मुझे उस ओर देखने का इशारा किया जहाँ सप्तर्षि काली पहाड़ी पर मामूली डोलची की तरह अपने कोने को ऐसे टिकाये था मानो अपनी पूँछ के नदारद तारे को काली पर्वतमाला के पीछे से उलीच कर निकाल रहा हो। तारों के भी क्या कहने! कितने टूट-टूटकर बरस रहे थे! मौसम खुश्क था, हवा पारदर्शी, पाला पड़ रहा था और निःस्तब्धता में पहाड़ी से, सप्तर्षि के नीचे से बिल्कुल अलग ही, खास आवाज़ सुनायी पड़ी : शुरू में वह चीतलों की आम सीटी की तरह हुई और फिर तीखी सीटी तेजी से अधिकाधिक भारी चिंघाड़ में बदल गयी, एक साइरन की तरह, पर इस ध्वनि का क्रम उल्टा था।

खड्ड के दूसरे छोर पर इस सीटी-चिंघाड़ के उत्तर में ठीक ऐसी ही सुनायी पड़ी, और आगे धुँधली पहाड़ी पर ऐसी ही चिंघाड़ सुनायी दी, उससे आगे—हमारी चिंघाड़ की हल्की-सी प्रतिध्वनि की तरह और भी दूर से हमारी प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि की तरह सुनायी दी।

वह समय आ गया जिसकी हमें कब से प्रतीक्षा थी। चीतलों की संगम ऋतु शुरू हो गयी।

सुबह तक चिंघाड़ जारी रही ओर जब दिन निकल आया तो हमने देखा कि पहाड़ी की ढलान पर, मैदान के पास बड़ा श्रृंगी खड़ा था और उसकी पीठ पर काली धारी साफ़ दिखायी दे रही थी। वह उस 'कलपीठू' से बहुत मिलता-जुलता था जो झरने के पास तब दूसरे हिरणों के साथ आया था जब मैं वहाँ नहा रहा था। यह श्रृंगी अब दूर से उससे ज़्यादा सख्त लग रहा था, जैसा मुझे तब लगा था, वह निरन्तर इधर-उधर देख रहा था मानो उसे चिन्ता के साथ किसी बात की प्रतीक्षा हो। फिर शायद झाड़ियों में कुछ हुआ और वह बेतहाशा उनकी ओर दौड़ पड़ा, एक झाड़ी से हिरणी निकलकर दौड़ पड़ी और वह उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ कटक पर चढ़ गया। उसी क्षण कटक के पीछे से उगते सूरज की पहली किरणें फूटीं, तुषार में लिपटा पहाड़ी नरकट चमचमा उठा और पूरी पहाड़ी की चमक ने हमारी आँखें चौंधिया दीं। जब लूवेन के साथ दौड़ता हुआ मैं ऊपर चढ़ा तो हिरणी चरते झुण्ड में उसी तरह जा छिपी जैसे कोई चंचल बाला अपनी सखियों के बीच छिपकर पकड़ में नहीं आती। पर इस अकेली हिरणी की वजह से सारे झुण्ड का जीना हराम हो गया, 'कलपीठू' धीरे-धीरे टहल रहा था। रात ही को वह कहीं कीचड़ में नहा आया, शायद इस प्रकार वह अपनी कामवासना की आग को यथासम्भव ठण्डा करना चाहता होगा। वह कुछ नहीं खा रहा था। प्रतीत होता था कि उसे कोई खुशी न मिल रही थी, कामवासना सिवाय यातना के उसे कुछ न दे रही थी, और अब सारा जीवन एक लगभग अनवरत यातनापूर्ण चिंघाड़ ही बनकर रह गया था। उसे पल भर का भी चैन न मिल रहा था। एक भी मादा अगर जरा-सा भी हरम से निकलने की सोचती तो झट से जाकर भगोड़ी को वापस झुण्ड में खदेड़ देता।

अचानक सब हिरणों के सिर एक दिशा में मुड़ गये और वहाँ, टीले के पीछे से किसी के सींग उगने लगे। 'कलपीठू' चौकस हो गया पर सींग बड़े तुच्छ निकले : उसी भगोड़ी हिरणी की गन्ध को सूँघता हुआ कोई औसत, बेहद मामूली श्रृंगी आ रहा था। 'कलपीठू' ने उसे खदेड़ने का प्रयास तक न किया, उसने बस नाक सिकोड़कर फूत्कार की और आगन्तुक ढलान पर ठिठककर खड़ा हो गया, उसमें एक कदम आगे बढ़ने का साहस न था। हवा में और ज़मीन पर हिरणी की गन्ध फैली हुई थी। उधर पहाड़ी से उसी रास्ते श्रृंगी उसकी गन्ध को सूँघते हुए आ रहे थे, और मानो सिर नवाते हुए अन्तिम टीले के पीछे ओझल हो जाते और फिर अचानक उसके पीले से उनके सींग

प्रकट होते। पर ये सब ऐसे थे कि 'कलपीठू' के नथुनों की हरकत को देखते ही ठिठककर खड़े हो जाते थे। कई ढीठ भी आये। 'कलपीठू' को नाक सिकोड़कर, अपनी सलेटी जीभ फटकारनी पड़ती और दौड़कर उन्हें खदेड़ना पड़ता। कुछ ऐसे भी थे कि उन्हें खदेड़ा जाता और वे फिर चुपके से पास आ जाते, तब यह क्रम चलता रहता जब तक हरम का मालिक यह न समझ जाता कि अगर ये धूर्त केवल हवा में बसी गंध से ही सन्तुष्ट होकर चुपचाप झुण्ड के पास खड़े रहें तो इसमें उसका कोई नुकसान नहीं। कुछ बड़े जवान भी थे, सींगों के स्थान पर उनके अभी खूँटें ही थीं, ये तो बस वयस्क हिरणों की नकल कर रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे, एक दूसरे पर फूत्कार रहे थे, माथे भिड़ाकर एक दूसरे को धकेलने लगते। इस प्रकार हिरणों के जीवन में धीरे-धीरे सामान्य दीर्घकालीन सहजता स्थापित हो गयी, कुछ-कुछ वैसी ही जैसी दीर्घ शान्तिकाल में हम लोगों के जीवन का ढर्रा होता है। हिरणियाँ अपने झुण्ड में इच्छा-अनिच्छा की सीमा पर डगमगाती मादा को छिपाये चैन से चर रही थीं, हिरनौटे अपने सींकों जैसे सींगों को टकराते बकरों की तरह माथे भिड़ाते खेल रहे थे, आधी पहाड़ी पर श्रृंगी-सहायक हरम के ताकतवर मालिक के हर इशारे को मानने को तैयार बाअदब खड़े थे। और अचानक पूरे के पूरे झुण्ड की नज़रें कोई असाधारण भनक पाकर अब उस टीले की ओर मुड़ गयीं जिसकी आड़ से कामातुर मादा की गन्ध सूँघ-सूँघकर सब श्रृंगी आ रहे थे। शीघ्र ही सबको टीले के पीछे से ऊपर उठते हुए सींग दिखायी दिये—और सींग भी कैसे! सींग धीरे-धीरे उग रहे थे और लगता था मानो सभी हिरण घबराकर यह सोच रहे थे : अरे, कब होंगे उगना बन्द? पर जब सींगों के बाद अजेय ललाटवाला शक्तिशाली सिर दिखायी पड़ा तो स्थिति फौरन साफ़ हो गयी : सर्वशक्तिमान, टैगा का स्वामी आया है। मैं भी फौरन समझ गया कि यह बलवान श्रृंगी मृग वही 'सुरमई नयन' था, जिसे मैंने चिकी-चिकी खड्ड में अपने आगमन के पहले दिन इतना मंत्रमुग्ध होकर देखा था। तब भी वह दूसरों की तुलना में, 'कलपीठू' तक की तुलना में बहुत भव्य लगा था, पर अब उसकी गर्दन बेहद फूली हुई थी, गर्दन के नीचे से शीतकालीन सलेटी बाल दाढ़ी की तरह लटके थे, संवेदनशील रक्तिम श्रृंग अब, शत्रु को मौत के घाट उतारने वाले भयंकर अस्त्र बन गये थे। 'कलपीठू' की तरह ही वह भी कीचड़ में लथपथ था, उसका गन्दा, अपने ही वीर्य से सना पेट फड़क-फड़ककर पिचक रहा था—नयी पीढ़ी में हिरण्य जीवन को जारी रखने का एकाधिकार पाने की खातिर यह पशु कुछ भी करने को तैयार था, पशु आपे में न था। झुण्ड को देखकर 'सुरमई नयन' बस पल भर को ठिठका और फौरन सब भाँप गया, और सब उसे फौरन भाँप गये : यह सम्भव था कि इससे पहले भी द्वन्द्वों में श्रृंगियों की ताकत की आजमाइश हो चुकी थी, क्या पता बाहरी रूप से ही ताकत छलकती हो। कुछ भी हो, पर झुण्ड और 'सुरमई नयन' के बीच जितने भी श्रृंगी खड़े थे, सब सहमकर पीछे हट गये, लगता यही था कि 'कलपीठू' का 'सुरमई नयन'

के साथ कोई पुराना खूनी हिसाब-किताब बाकी था। हो सकता था कि उनके बीच यह अलिखित समझौता हो कि 'कलपीठू' को 'सुरमई नयन' की नज़र में नहीं पड़ना चाहिये और अगर आमना-सामना हो ही गया तो पीठ नहीं दिखानी होगी और अन्तिम साँस तक लड़ना पड़ेगा। सींग बेशक भयंकर अस्त्र होते हैं पर फिर भी सींग सब कुछ नहीं होते—ऐसी भी घटनाएँ देखने में आ चुकी हैं जब बिना सींग के हिरण ने सींगवाले की पसलियाँ तोड़ीं। पर 'सुरमई नयन' के सींग उसकी छिपी शक्ति को दर्शा रहे थे। पर 'कलपीठू' की दुष्ट आँखों में मानो पहलवान को धोखे की चाल में फँसाने का इरादा छिपा बैठा था : 'अपनी जान की परवाह नहीं, पर बच्चू तुझे मज़ा चखा दूँगा!' पर 'सुरमई नयन' वक्त बरबाद नहीं करना चाहता, वह सिर झुकाकर दौड़ा और 'कलपीठू' के सींगों से अपने सींग, उसके माथे से अपना माथा टकरा दिया। 'कलपीठू' कुछ पीछे को हटा, पर प्रहार को झेलकर टाँगों पर टिका रहा, और सबसे बड़ी बात तो टाँगों पर टिके रहने की है : अगर घुटनों तक पर भी गिरे तो दुश्मन झट से सींग छुड़ाकर अपनी आँखों के ऊपरवाली पैनी खूंटियाँ बगल में, दिल में भोंक देगा—बस तब समझो खेल खतम। सींग से सींग, माथे से माथा भिड़ाकर जितना चाहो लड़ा जा सकता है, बस ताकत जवाब न दे जाये, बस गिरने की नौबत न आये। आसार तो यही थे कि लड़ाई लम्बी, चकनाचूर करनेवाली होगी पर हुआ यह कि अपना प्रहार करते समय 'कलपीठू' की टाँगों के नीचे ठूँठ आ गया और इस ठूँठ से अपनी टाँगों को मिली टेक के फलस्वरूप 'सुरमई नयन' पर ऐसा वार करने का मौका मिला कि टैगा के स्वामी के घुटने मुड़ गये। पर 'कलपीठू' को अपनी श्रेष्ठता का लाभ उठाने का मौका नहीं मिला। अपने लिए घातक खतरे को समझकर 'सुरमई नयन' झट से सम्भल गया और उसने ऐसी प्रचण्डता से प्रहार किया कि 'कलपीठू' घुटनों पर ही नहीं गिरा बल्कि उसका सन्तुलन बिगड़ गया और बगल पर गिरने लगा। प्रतीत होता था कि 'सुरमई नयन' झट से अपने सींग छुड़ायेगा और गिरते शत्रु की बगल में ऐसी चोट करेगा कि वह फिर कभी न उठ पायेगा। निःसन्देह होता भी यही पर अचानक न जाने क्यों 'सुरमई नयन' भी परास्त प्रतिद्वन्द्वी के साथ गिरने लगा, और अब दोनों ज़मीन पर पड़े ऐसे घरघरा और टाँगें चला रहे थे मानो दम तोड़ रहे हों।

यह सब समझ में न आ रहा था, पर लूवेन को ऐसा देखने का मौका मिल चुका था, पहले उसी की समझ में बात आयी, वह बेहद खुश होकर रस्सियाँ लाने के लिए तेजी से दौड़ा-दौड़ा गया : बात यह थी कि हिरणों के सींग आपस में उलझ गये थे और जब तक वे सुलझे नहीं या उन्होंने एक दूसरे को घायल न कर दिया उससे पहले ही हमें उनको बाँध लेना चाहिए था।

भाग्य ने भी क्या साथ दिया, ऐसी आश्चर्यजनक बात हो गयी!

पर यह भी कोई बात हुई जब भाग्य न मुस्कराये, और फिर दुर्भाग्य आता है, हमेशा से यही होता आया है... शुरू से ही हमारा काम अच्छा चल निकला। हमने दो बढ़िया श्रृंगियों को बाँध लिया, हिरणों की संगम ऋतु का राजा 'सुरमई नयन' और उसका जानी दुश्मन 'कलपीठू' हमारे हाथ आ गये, लूवेन ने गड्ढे में चार जवान श्रृंगियों तथा दो हिरनौटों को और फँसा दिया।

10

मेरी समझ में तो ब्राह्ममुहूर्त की वेला आदमी को उस दैनन्दिन सुख के बदले मिलती है जब लोग सान्निध्य का जी भर रसपान करके या इसके विपरीत एक-दूसरे को तानों, ईर्ष्या, किसी अनिष्ट के पूर्वाभास से यातनाएँ दे-देकर या बीमार बच्चे के रोने-बिलखने से चूर होकर घोड़े बेच के सोते हैं। दुख-सुख के इस सामान्य क्रम से निःसन्देह मैं भी अछूता नहीं हूँ, पर यह सुख तो गृहस्थी का सुख है और ब्रह्ममुहूर्त की वेला में जो मुझे इस सुख के बदले मिली है, मैं प्रकृति की शक्तियों से मिलकर एक हो जाता हूँ और वह अदृश्य आम कार्य करता हूँ जिसके फलस्वरूप सुखी लोग सूर्य की किरणों से जागकर अक्सर उल्लास के साथ कहते हैं : "अरे, आज कितनी सुन्दर सुबह है!" और अब मैं, जिसे ब्रह्ममूहर्त की वेला में जीवनसम्बन्धी अटकलें लगाने का समृद्ध अनुभव प्राप्त है, पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि कोई भी सच्चा सुख ब्राह्ममुहूर्त की वेला में संसार की सभी शक्तियों के इस अगोचर और सर्वथा निःस्वार्थ संयुक्त कार्य पर आधारित होता है। मैं हमेशा लूवेन से भी काफ़ी पहले उठ जाता हूँ और किसी ठोस चीज़ पर कन्धा टिकाकर किसी बात की बाट जोहने और सोचने लगता हूँ जब तक कि कोई समाधान न आ जाये : प्रकृति में दिन दो कुर्सियों की तरह हूबहू एक जैसे नहीं होते, दिन केवल एक ही बार आकर सदा के लिए चला जाता है। और जब ब्रह्ममुहूर्त की वेला में यह नया, गुणात्मक दृष्टि से अद्वितीय, अपूर्व दिन निरूपित होता है, मैं भी रौ में अपनी सोच में डूबा रहता हूँ। और जब मुझमें तारतम्य और वातावरण में आगामी दिन निरूपित हो जाता है, मैं काम पर रवाना हो जाता हूँ। वैसे ऐसा भी बेशक कभी होता है कि सुबह सारी गड्डमड्ड हो जाती है, कुछ पल्ले नहीं पड़ता और विचारों में तारतम्य नहीं बनता और मेरा कुल्हाड़ा कल की तरह आज भी बस यंत्रवत ठक-ठक करने लगता है। वसन्त और ग्रीष्म के निरन्तर कोहरे के बाद पतझड़ में और जाड़े भर इस प्रदेश में आकाश का जीवन उस वेला में बड़ा अद्भुत और विलक्षण होता है जब धरती पर अभी झुटपुटा छाया होता है। इटली की धूप जैसे आलोक से सम्पन्न शीतकालीन आकाश को देखकर लगता है कि सूर्योदय के समय अनोखी प्रफुल्ल धरती का दृश्य खुलेगा पर साइबेरियाई पवन ने सब तबाह कर डाला, और यह सारा का सारा महाआलोक

सागर की ओर अभिमुख हो जाता है और वह, पूरा का पूरा महासागर ही नीलाभ हो जाता है तथा नीलिमा की पृष्ठभूमि में विभिन्न चट्टानों की और चट्टानों पर पाइन वृक्षों की काली आकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, पाइन वृक्षों की, झंझावातों से जीवनपर्यन्त अथक संघर्ष करने वाले योद्धाओं की, जो सदा इतने विविध होते हैं कि एक जैसे दो कभी देखने को नहीं मिलते। फिर जब प्रकाश तेज हो जायेगा और नीलिमा पर अनन्त सुनहरा मार्ग बिछ जायेगा तो थल पर भी मामूली से मामूली रंग भी, कोई बदरंग धब्बा तक अत्यन्त चटकीले फूल में बदल जायेगा। अब मेरे हरे-भरे द्राक्षमण्डप के स्थान पर, जहाँ कभी मेरी 'हुआ-लू' से भेंट हुई थी, केवल एक काला वृक्ष ही बचा है जिसकी टहनियों पर अंगूर की काली लताएँ लिपटी हैं, और वहाँ जहाँ उस तम्बू में मेरी खिड़की थी अब लता का फन्दा लटका है और इस फन्दे में अंगूर की एकमात्र पत्ती फड़फड़ा रही है, शायद वह इतनी सुन्दर न भी हो पर प्रकाश में वह लहू की तरह लाल है। और पीली निर्जीव चरागाह में एजेलिया के पत्तों के तश्तरियों जैसे लाल अवशेषों के धब्बे इतने स्पष्ट और इतने सजीव दिख रहे हैं कि वे मारे गये हिरणों के तश्तरियों में भरे खून जैसे लगते हैं।

और लो सारी धरती प्रातः की धूप में नहा गयी, दोनों में अब तक दुबके हिरणों के चरागाहों के कोने दिखायी देते हैं—धूसर नलियों की तरह मुड़ी पत्तियों वाली बलूत की झाड़ियाँ—यह चीतलों का शीत आहार है जो उत्तरी मृगों की तरह खुरों से बर्फ़ खोदकर घास नहीं ढूँढ़ सकते। अगर लिण्डन और बलूत की इन झाड़ियों को बर्फ़ ने ढक दिया तो क्या होगा? तब हम सर्दियों में अपने हिरणों को क्या खिलायेंगे? इतना चिन्ताजनक विचार आने पर कुछ किये बिना पेड़ से कन्धा टिकाये नहीं खड़ा रहा जा सकता। हम कुल्हाड़ियाँ उठाते हैं और टहनियाँ काटने चल पड़ते हैं...

लूवेन ने टैगा में खबर भिजवा दी और चीनी मजदूर हमारे यहाँ आ गये। बाड़ाबन्द उकाब घोंसला अन्तरीप पर जहाँ अकेली 'हुआ-लू' स्वच्छन्द चर रही थी हमने चरनियों, बाड़े और श्रृंग काटने की कोठरी समेत हिरणशाला बनायी। हम दिन भर काम करते हैं और शाम को मैं श्रृंग काटने की मशीन की रूपरेखा बनाने के लिए हिसाब-किताब करता हूँ, लोहे, कीलों, तार की कमी के कारण मुझे ढेरों तरकीबें सोचनी पड़ती थीं ताकि हुकों, कब्ज़ों और पेंचों के बिना काम चलाया जा सके। मुझे चीनियों को देखकर बड़ा आश्चर्य होता कि वे कैसे ताश खेलते हैं : अगर किसी के पास लकी पत्ता आ जाता और वह बाजी जीत जाता तो वह जोड़ीदारों को पत्ता दिखाने का कष्ट तक न करता—वह बस सभी पत्तों को गड्डी में डाल देता और दाँव की राशि उठा लेता। कोई जाँचने की सोचता तक नहीं, धोखे की कोई सम्भावना ही नहीं थी। कितनी सुन्दर बात है यह। और अगर फिर भी किसी ने धोखा दे ही दिया तो धोखेबाज का हमारे यहाँ की तरह कान नहीं मरोड़ा जायेगा बल्कि उसे जान से मार डाला जायेगा, इसलिए मौत के

डर से कोई भी धोखा देने की हिम्मत ही नहीं करता : यह तो कोई खास सुन्दर बात है नहीं... और भी ढेरों ऐसे तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं जिनका कोई समाधान नहीं मिलमा; कभी-कभी सोचता कि उनका इसलिए समाधान नहीं किया जा सकता कि परामर्श के लिए न पुस्तकें हैं न पढ़े-लिखे लोग; पर असलियत यह थी, मुझे बाद में इसमें विश्वास हुआ, कि पराये विचारों युक्त परामर्श के कारण ये प्रश्न कुछ समय के लिए दब जाते हैं, स्थगित हो जाते हैं पर हल नहीं होते : हाथ पर हाथ धरे बैठकर ये प्रश्न हल करना असम्भव है—इन प्रश्नों को समाधान पूर्णतः काल के क्रमानुसार कार्य में निहित है। मुझमें और चीनियों में मुख्य अन्तर यह था कि मैं हर चीज़ का पूरा हिसाब-किताब लिखकर रखता हूँ, अपने हर कदम का आत्मविश्लेषण करता हूँ। उनके यहाँ सब विश्वास पर, सब याद पर आधारित होता है। ताकि ये सब लोग मुझे **कप्तान** कहें इसके लिए केवल यही काफ़ी है कि मैं हर चीज़ का हिसाब करके नोट करता रहता हूँ, हिरणशाला के, श्रृंग काटने की मशीन के छोटे-छोटे नक्शे बनाता रहता हूँ... पर क्यों? हाँ, ऐसे ढेरों प्रश्न हैं, इतने उग्र, उनका समाधान इतना आवश्यक लगता है पर पूछूँ किससे। मैं यह सही-सही जानना चाहूँगा कि मेरी कप्तानी की सत्ता की उत्पत्ति का मूल आखिर क्या है। क्या यह सत्ता सम्पूर्ण विश्व के कप्तान यूरोप की शक्ति का अंश थी जिसे बहुत पहले से बाकी सभी देशों के ऊपर हिसाब-किताब करने, लिखने और सक्रिय होने की श्रेष्ठता प्राप्त थी या चीनियों की नज़र में मैं केवल इसीलिए कप्तान बन गया कि मैं, एक गोरा आदमी, उनकी नज़रों में पूँजी नाम के कप्तान का प्रतिनिधि हूँ... मेरे दिमाग में तरह-तरह के ढेरों प्रश्न आते हैं और उन्हें हल करने की असम्भावना के कारण कभी-कभी एकाकीपन की यातना, ऐसी तीव्र पीड़ा मुझे सताने लगती है कि मैं गिनने, लिखने और श्रृंग काटने की मशीनों के डिजाइन सोचने की क्षमता से वंचित हो जाता हूँ। ऐसे मौकों पर वृद्ध लूवेन सदा मेरी सहायता को आगे आता है, और वह भी प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बस मुख्यतः अपनी मुस्कान से वह मुझे याद दिला देता है कि मेरे जीवन की जड़ सही-सलामत है, केवल कुछ समय के लिए उसका विकास रुक गया है, उस पर हिरण का खुर पड़ गया है; एक निश्चित समय बीत जायेगा और डण्ठल पर लगा उसका फूल ज़रूर उग आयेगा। कभी-कभी इसके बारे में इतने मनोयोग से देर-देर तक सोचता रहता हूँ कि जीवन की यह जड़ एक किंवदन्ती बनती जा रही है, मेरी रग-रग में दौड़ रही है, मेरी शक्ति बन रही है और अचानक तीव्र पीड़ा का स्थान ऐसा ही तीव्र हर्ष ले लेता है। और मुझे लूवेन को भी और सभी चीनी मज़दूरों को भी किसी तरह हर्ष प्रदान करने की इच्छा होती है। 'मेरा-तेरा' की वीभत्स भाषा में मैं लूवेन को यह सिद्ध करने का प्रयास करता हूँ कि पूर्वी लोगों को भी हिसाब-किताब लिखने की आवश्यकता है ताकि अपना सब कुछ अपने लिए सुरक्षित रखकर वे भी कप्तान बन जायें। अपनी नेकी के सहारे लूवेन चिड़ियों को भी और

जानवरों को भी समझता है पर केवल मुझे ही नहीं समझ पाता।

"तेरा गिन," काग़ज़ की ओर इशारा करके वह कहता है, "तेरा यह सौभाग्य है?"

"हाँ-हाँ, बेशक, समझ के साथ।"

"पर मेरा गिनना समझता नहीं, हमारा तेरा मदद करेगा, ये ही अच्छा होगा, अच्छा, भौत-भौत दवा होगा! तेरा गिन, हमारा तेरा मदद करेगा!"

11

जब संगम ऋतु समाप्त हो गयी और अन्तिम हिरणी ब्याहकर धुँधली पहाड़ी के अपने कन्दर में जाड़ा बिताने चली गयी तो चिंघाड़ते, मादा की खोज में निरन्तर भटकते, भुखमरी और एक-दूसरे के प्रति घृणा से बेहाल श्रृंगी अब जैसे मानो कुछ हुआ ही नहीं, छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर वीभत्स बीमारी का इलाज करने के लिए ऊँचे पहाड़ों में देवदार के वनों की ओर रवाना हो गये। उसी समय हमने अपने बन्दियों को हिरणशाला के थानों से आँगन में छोड़ दिया और वे सब, कुछ समय पहले तक के जानी दुश्मन एक विशाल खोखले तने से बनी लम्बी नाँद में शान्ति के साथ चारा खाने लगे। सब यहीं थे—हिरणों का राजा बलवान 'सुरमई नयन'; आँखों में अपनी काले मंसूबे छिपाये चिड़चिड़ा 'कलपीठू'; कमानी जैसे चुस्त-दुरुस्त बदन और चीतलों में बेहद विरली बड़ी-बड़ी बादामी आँखोंवाला तीन साल का जवान हिरण 'छैला'; नाटा पर गठीला और बेहद भला 'झपकू' : अगर उसकी नज़र से नज़र मिलायी जाती तो वह हर बार आँखें झपकने लगता' 'ढिल्लू' और 'खड़सीगू'—वे शायद सगे भाई थे : सब हिरणों की चित्तियाँ बेतरतीब बिखरी होती हैं पर इनकी सफ़ेद चित्तियाँ लाल खाल पर सीधी रेखाओं में बनी थीं, शायद, ऐसी किसी हिरणी ने उन दोनों को जन्मा होगा। सब तरुणों को, साल-साल के सभी हिरनौटों को न जाने क्यों हमने मिशूत्का नाम दे डाला। हिरणों का बाड़ा इतना छोटा नहीं था, आकार भी उसका चौकोर न था क्योंकि हमने वहाँ लगे पेड़ों से खम्भों का काम लिया था। और अहाते में भी हमने एक भी पेड़ नहीं काटा ताकि गर्मी में हिरण उसकी छाया में शरण ले सकें। इसके लिए भी पेड़ बचे थे ताकि ज़रूरत पड़ने पर उनके बीच त्रिभुजाकार में डण्डे ठोके जा सकें, और तब सारा अहाता ऐसे त्रिकोण में बदल जाता जिसका शिखर थानोंवाले सँकरे गलियारे की ओर होता, बस त्रिकोण के आधार में हिरणों को हाँकते ही वे सब के सब सीधे थानोंवाले गलियारे में घुस जाते। गलियारे के सिरे पर श्रृंग काटने की मशीन थी। यह एक ऐसे बक्स की तरह थी जिसकी पेंदी हटायी जा सकती थी, हिरण उसमें गिर जाता और बगलों से उसे टेक के तख्ते सँभाले रहते, टाँगें, उसकी हवा में लटकी रहतीं। इस प्रकार हरेक हिरण को किसी

भी समय श्रृंग काटने के लिए या वज़न तौलने के लिए पकड़ा जा सकता था।

बाड़े, सींग काटने की मशीन से सम्पन्न हिरणशाला के निर्माण के लम्बे और काफ़ी शोरगुल भरे चीनी मज़दूरों के काम के कारण 'हुआ-लू' को पालतू बनाने में बहुत खलल पड़ रहा था; उस समय के दौरान वह अपने मिशूत्का के साथ कहीं चट्टानों के ढेर में चली गयी थी जहाँ वह अन्तरीप के ऐन सिरे पर चीड़ के पेड़ों के बीच छिपी हुई थी। वहाँ मैंने उकाब के घोंसले को कब का उजाड़ दिया था ताकि हिंस्र पक्षी हिरणों को न बिदकायें जो डर के मारे कोई भी बाधा तोड़कर भाग सकते हैं। और जब अन्तरीप पर हिरणशाला का काम पूरा हो गया और फिर से शान्ति छा गयी, मैं वहाँ, चीड़वाली चट्टानों में सोयाबीन के दानों से भरी छोटी नाँद और बलूत की टहनियों के कुछ गुच्छे रख आया। चट्टानों में कुछ खाने को था नहीं, 'हुआ-लू' बेहद भूखी थी और निःसन्देह पहली ही रात को वह सभी दाने और टहनियाँ चट कर गयी। तब मैंने नाँद को हिरणशाला की ओर कुछ सरका दिया और उसमें दाने डाल दिये तथा कुछ देर तक भुर्ज की छाल का बिगुल बजाया। शीघ्र ही वह खुलकर आने लगी, मैं चाहे जितनी देर तक बिगुल बजाता रहता, वह खड़ी-खड़ी सुनती रहती। मैं यह तक सोचने लगा कि बिगुल का संगीत सुनने में उसे आनन्द आता है, पर एक बार जब मैं बजा रहा था, वह साहस करके नाँद के पास आ गयी और सिर झुकाकर खाने लगी; उस दिन से इस बात पर ध्यान दिये बिना कि मैं बजाता होता या यूं ही खड़ा देखता होता, वह रोज़ खाने लगी। धीरे-धीरे मैं उसे लगभग हिरणशाला तक ले आया, मैंने नाँद को बाड़े में खुले फाटक के बिल्कुल पास रख दिया, पर मेरे लाख बिगुल बजाने के बावजूद भी वह अन्दर घुसने का साहस न कर सकी।

पर उसके साथ यह झमेला ज्यादा देर तक नहीं करना पड़ा। ऐसा मौसम आ गया था कि कोई भी आज़ाद हिरण, अगर उसे पता होता कि हमारे बन्दी कैसी परिस्थितियों में रहते हैं, खुद यहाँ आकर उसे सोयाबीन से भरी नाँद के पास आने देने की मिन्नत करता। एक ऐसा दिन आया जब हमारे यहाँ अचानक जाड़ा आ धमका। शाम की बात है, मुझे ऊँचे कगार पर हिरणों जैसी चट्टानों का एक समूह दिखायी पड़ा, मैं इन मूर्तियों को पहाड़ों में प्रकाश और छाया की माया समझकर उनका रसास्वादन करने लगा : वहाँ तीन वयस्क हिरण, दो हिरणियाँ, एक श्रृंगी और दो हिरनौटे दिख रहे थे। ये सब ऊँचे-नीचे सिर सांध्य आकाश की पृष्ठभूमि में मोर की दुम की तरह फैले थे। अचानक उनमें से एक हिरण जैसी चट्टान हिली, यही नहीं, यहाँ, नीचे तक हिरण की हल्की-सी सीटी उड़ती आयी। सचमुच इतनी ऊँचाई पर ये हिरण ही निकले, खड्ड के दूसरे चट्टानी कगार पर भी हिरण थे, धुँधली पहाड़ी के कन्दरों के ऊँचे कगारों पर भी, झुटपुटे में सर्वत्र पहाड़ों में विलीन हिरण ही हिरण थे। पहाड़ों पर हिरणों को देखकर लूवेन फौरन हमारी फ़ान्ज़ा के सरकण्डों के छप्पर पर बिछे जाल को कसने में जुट गया : उसे पक्का

विश्वास था कि अगर शाम को हिरण पहाड़ पर निकले तो कल मौसम बिगड़ जायेगा। मैं भी किसी धुँधले-से पूर्वाभास के कारण प्रकृति में किन्हीं घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे यह अस्वाभाविक और भयावह लग रहा था कि पिछले कई दिन एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न नहीं थे, वे मानो आइने में एक ही दिन के प्रतिबिम्ब मात्र थे : इतने सुस्त, शान्त तुषार पड़ रहा था, आकाश खुला था और यह देखकर सिहरन दौड़ जाती कि आखिर इस बिल्कुल निर्जीव, पीलापे से पुती मरुभूमि के ऊपर तो बयालीसवें अक्षांश का प्यारा इटालवी सूरज चमक रहा है! निर्जन, सुनसान धरती, अज्ञात प्रकृति! मुझे लग रहा था मानो मैं अनन्त क्रान्ति के देश में पहुँच गया, जहाँ वसन्त का सूर्य पेड़ों में रस का संचार करवा देता है और शाम को धोखा खाया रस पाले के कारण जम जाता है और नीचे से लेकर ऊपर तक पेड़ चटककर फट जाता है। दसियों सालों तक, क्या पता सदियों तक ही बलिष्ठ पेड़ चट्टान की ओट में छिपे रहे और अचानक चट्टान टूट गयी, रोड़ी का ढेर बनकर बिखर गयी और तूफ़ान ने पेड़ों को माचिस की तीलियों की तरह उड़ा दिया। और बाढ़ें क्या-क्या कर डालती हैं। और यह कितना अजीब लगता है कि मानव को, प्रकृति के सबसे बुद्धिमान जीव को, कल के दिन के बारे में हिरण से पूछना पड़ता है।

सुबह को ब्रह्ममुहूर्त की वेला में आतुरता के साथ यह देखने बाहर निकला कि हिरणों ने क्या भविष्यवाणी की थी। और जब दिन निरूपित होने लगा तो अचानक मेरे पाँव तले ज़मीन ऐसे ही खिसक गयी जैसे श्रृंग काटने की मशीन में हिरण के नीचे से, सब दिशाएँ, सब ऋतुएँ गड्ड-मड्ड हो गयीं : काफ़ी गर्मी हो गयी थी, ग्रीष्म मेघ प्रकट हुए—सफ़ेद-श्वेत, फिर काली, सुन्दर-सुन्दर, प्यारी-प्यारी घटाएँ आयीं और हमारे यहाँ की तरह गरज और बिजलियों की चमक के साथ बढ़िया बारिश, जैसी यहाँ पूरी गर्मियों में भी अनदेखी होती है। और शाम तक यही चलता रहा। लगता था कि हिरणों ने धोखा दे दिया, पर शाम को अचानक बड़ी ठण्ड हो गयी, बालटियों में भरा पानी जम गया और बर्फ़ का तूफ़ान शुरू हो गया।

पर पहाड़ों की तो माया देखो! हमारे खड्ड की ऊँची-ऊँची चट्टानी दीवारों के बीच अपनी फ़ान्ज़ा में हम चैन से आग के पास बैठे थे, गरज और चीत्कार तथा गिरती चट्टानों की खास गड़गड़ाहट सुन रहे थे : समुद्र के पास ज़ोर की गड़गड़ाहट हुई और हमें पगडण्डी के ऐन ऊपर लटकी चट्टान का ख्याल आया। और कभी अचानक बिल्कुल शान्ति छा जाती, मानो विराट तूफ़ान-अजदाह हमारे ऊपर से उड़ता जा रहा था और उसकी दुम गुजर गयी और शान्ति छा गयी। इस दौरान समुद्र अपनी भव्य, भूमिगत-सी गर्जना के साथ तट पर बटिया—अपने असंख्य गोल, पेंदी पर पड़े पत्थरों को ठेलता और शीघ्र ही इस बटिया को वापस ले जाता और वह असन्तोष के साथ बड़बड़ाती ठुनकती। समुद्र इस तरह कोई दस बार बटिया को लाया-ले गया होगा कि फिर से सनसनाता, भयंकर फुफकार करता तूफ़ान-अज़दाह लौट आया और हमारे ऊपर अन्धकार में बड़ी देर तक उड़ता रहा जब तक समुद्र की ओर से फिर से गर्जना और बड़बड़ाहट न सुनायी दी : बटिया तट पर आती और वापस समुद्र में खिंची चली जाती और तूफ़ान इतने में वापस मुड रहा होता था...

अगर ये भले पहाड़ न होते तो हमारे साथ हमारी यह फ़ान्ज़ा फेजेंट के पंख की तरह उड़ जाती और सब हिरण भी और तेदुएँ भी, बाघ भी उड़ जाते। पर पशुओं को पहले से ही खतरे का भान हो गया था और वे हवा से छिपे स्थानों पर जाने लगे थे। वहाँ हिरणों की पनाहों में वे आराम से खड़े होते, यहाँ हवा बिल्कुल भी नहीं पहुँचती, उनके पास कुछ करने को होता नहीं इसलिए पेड़ों की टहनियाँ ही तोड़ने लगते। पहाड़ों में शिकार के समय मैं कई बार हिरणों की इन पनाहों को देख चुका था, तुड़ी-मुड़ी टहनियों और कुटी-मिट्टी की बदौलत मैं दूर से ही उन्हें पहचान लेता। बेशक, हमने भी यह ध्यान में रखा और हिरणशाला ऐसे ही बनायी कि हिरण हमारे तूफ़ान की चपेट में न आयें। पर 'हुआ-लू' के बारे में सोचकर डर लगता था—उकाब घोंसला अन्तरीप हवाओं के लिए पूरा खुला था, बस पनाह लेने की एक ही जगह थी, वहीं हमारी हिरणशाला थी और वह केवल उसी में शरण ले सकती थी।

ब्रह्ममुहूर्त की मेरी वेला ने उस बार मेरी आँखों को धीरे-धीरे धवलता का अभ्यस्त होने में सहायता दी पर फिर भी बाद में इतालवी सूरज की धूप में बर्फ़ की चमक आँखों के लिए असहनीय हो रही थी। चाहे प्रचण्डता कम हो गयी थी पर अभी तूफ़ान जारी था और हमारे लिए हिरणशाला जाकर 'हुआ-लू' को बचाना ज़रूरी था। हम टीलों के बीच से जा रहे थे, हवा से ठीक उसी तरह लुकते-छिपते जैसे शिकार के समय पशुओं से, और हमारे इतने अजीब-से पदचिह्न बर्फ़ पर छूटते जा रहे थे। क्या पता कहीं भूखा बाघ भी बाहर निकला हो और बर्फ़ पर अपने पंजों के निशान छोड़ता चल रहा हो? या बर्फ़ पर अपने निशान देखने के लिए आतंक की बनिस्बत भूखों मरना बेहतर समझता था? सहज ही, बर्फ़ खड्ड-खाइयों में जमा हो रही थी, खुले स्थानों पर पहले की तरह ही पीला पहाड़ी नरकट हिलोरें ले रहा था पर इन स्थानों को पार करना हमारे लिए दूभर हो रहा था : हम उन्हें छिपकलियों की तरह रेंगकर पार कर रहे थे, हालाँकि रेंगते समय तूफ़ान हमें पकड़ तो लेता पर ज़मीन से हमें उठाने की उसमें शक्ति न थी। अन्तिम खुले स्थान से हमें पूरा का पूरा उकाब घोंसला अन्तरीप दिखायी पड़ा और हमें अपने हिरणों को हिरणशाला में छिपे देखकर खुशी हुई और 'हुआ-लू' अपने मिशूत्का के साथ हिरणशाला के सामने खाई में ऐसे खड़ी थी मानो प्रतीक्षा कर रही हो कि कोई फाटक खोलकर उसे अहाते में घुसने दे। जब हमने फाटक खोलकर अन्दर प्रवेश किया तो उसने अपने कान तक न हिलाये। मैंने उसकी इतनी जानी-पहचानी नाँद ली, उसमें सोयाबीन के दाने भरे और अहाते के बीचोबीच रख दी। फाटक से रस्सी का एक सिरा

बाँधकर, ताकि उसे खींचकर फाटक बन्द किया जा सके, मैं और लूवेन खाली थान में घुस गये और रोशनी के लिए खिड़की खोल ली। मैं अपने भुर्ज के बिगुल को इस झरोखे की ओर मोड़कर बजाने लगा और लूवेन रस्सी का सिरा पकड़े खड़ा था ताकि मेरा हुक्म मिलते ही उसे खींच ले। बिगुल की आवाज़ सुनते ही 'हुआ-लू' की आँखों में नरमी आ गई और वे सिमट गयीं, कान उसके, जो प्रायः इतनी सख्ती से खड़े थे, यूँ ही इधर-उधर लटक गये। गर्दन तानकर वह नथुनों में हवा भरने लगी और उसने पहला छोटा-सा कदम रखा। मैं कुछ देर और बजाता रहा, वह एक कदम आगे बढ़ी, फिर और एक, एक और। फाटक पर वह ठिठककर खड़ी हो गयी और सोच में डूब गयी, मैंने जान-बूझकर बिगुल नहीं बजाया ताकि उसे बुलाने की इतनी आदत न पड़ जाये। स्वयं दाने उसे बिगुल से ज्यादा बुला रहे थे, अब तो वे उसे अच्छी तरह दिखायी दे रहे थे। कुछ चुप रहने के बाद मैंने फिर बिगुल बजाया और इसने सारा फैसला कर डाला : वह चली, नाँद के पास आयी, उसने कुछ खाया और तभी मैंने लूवेन को इशारा किया। उसने सावधानी के साथ रस्सी खींची और फाटक बिना किसी शोर के बन्द हो गया। उसे तो, बेशक, सुनायी पड़ गया, उसने मुड़कर देखा, कान उसके खड़े हो गये। उसे यह तनिक भी अजीब न लगा कि अब फाटक बन्द था, उसे तो बस, एक ही सवाल सता रहा था—क्या बेखटके ये दाने खाये जा सकते हैं या नहीं? और जब उसे इसमें विश्वास हो गया तो उसने फिर से अपना सिर नाँद पर झुका लिया और अपने काले-काले होंठों से थोड़ा-थोड़ा करके स्वादिष्ट पीले दाने उठाने लगी।

12

जाड़ों में मुझे कई बार जाकर यह देखने की इच्छा हुई कि सर्दियों में जिन्सेंग कैसा होता है। उपोष्ण प्रदेश की कोमल से कोमल वनस्पतियों में से इस कोमलतम वनस्पति के हिमाच्छादित जीवन की मैं बड़ी कठिनाई से कल्पना कर पाता। यह जड़ दक्षिणी जलवायु में ऐसे भयंकर परिवर्तन को कैसे झेल पाती है? मुझे हिमाच्छादित गाती घाटी को भी देखने, पक्षियों और ग्रीष्मकालीन संगीतकारों—टिड्डों—के बिना उसकी निःस्तब्धता को सुनने की उत्कट इच्छा होती थी, पर सर्दियों में हिरणों की देखरेख का इतना काम होता था कि मैं जाने का मौका निकाल ही न पाया। हम चारा डालने और थानों की सफाई का काम करते थे। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि वह गन्दा काम मेरे लिए दूभर, उबाऊ था। 'हुआ-लू' के प्रति मेरी विशेष भावना कभी मरी नहीं, मानो यह केवल हिरणी ही नहीं बल्कि फूल भी थी और वह भी एक खास, मेरे निजी, अभी तक न निखरे व्यक्तित्व की खुद मेरे लिए अभी तक अबोधगम्य सम्भावनाओं से जुड़ा फूल।

और बाकी अन्य हिरण भी और यह उदित होता नया, महान कार्य भी मेरा अपना निजी कार्य था, इसके साथ ही तब अपने लिए मैं उससे कोई अपेक्षा नहीं करता था और हमारी भावी आय को लूवेन की तरह, मैं भावी, मुझे अभी अज्ञात लोगों के लिए दवा के रूप में देखता था। स्वयं मेरे लिए तो मेरा निजी काम ही दुनिया में सबसे बढ़िया दवा थी। कभी-कभी मैं घण्टों-घण्टों बैठा 'हुआ-लू' को ताकता रहता कि कैसे वह अपने कानों को विभिन्न दिशाओं में मोड़ती और फिर मैं भी उस दिशा में देखता जहाँ से उसे कुछ सुनायी पड़ता, यह होता कि मै बड़ी देर तक देखता रहता जब तक कि मुझे खुद को यह दिखायी न देता। कभी ऐसा होता कि ऊपर से कोई उकाब उड़कर जाता या, कहीं पास से भेड़िया गुज़रता और तब आँखों के नीचे उसकी लम्बी अश्रु-ग्रंथियाँ फैल जातीं और इसके कारण उसकी वैसे भी सुन्दर, बड़ी-बड़ी आँखें बहुत चौड़ी हो जातीं। अब मैं 'हुआ-लू' को किसी भी समय न केवल कानों के बीच सहला सकता था बल्कि मैंने उसे हमारी लाइबा का भी आदी करवा दिया : हिरणों की आम चराई के समय कुतिया हमेशा अहाते ही में रहती थी। सब हिरण बड़ी जल्दी ही उसके आदी हो गये और उसकी ओर कोई ध्यान न देते थे। अपने मिशूल्का के कारण अकेली 'हुआ-लू' ही लाइबा के प्रति इतनी उदासीन न थी। वह बहुत अच्छी तरह समझती थी कि लाइबा हिरनौटे को कुछ करने की हिम्मत नहीं करेगी, पर माँ की सहज वृत्ति उसे खाने के समय निरन्तर कुतिया पर तिरछी नज़र रखने को बाध्य करती थी। और मौका देखकर वह हमेशा कुतिया को अपने से दूर भगाने की कोशिश में रहती। पर लाइबा इतनी चपल थी कि हिरणी कभी भी उसको अपने पैने खुर से मारने में सफल न होती। बस एक बार ऐसा हुआ, लाइबा को पिस्सू ने काट लिया और जैसा कि परिस्थिति में सभी कुत्तों के साथ होता है, वह सुध-बुध खोकर, क्रोध में अपना सारा ध्यान एक पिस्सू पर केन्द्रित करके, नाक सिकोड़कर पेट पर दाँत फेरते हुए पिस्सू को पकड़ने लगी, उसकी पिछली टाँगें उठी हुई थीं। बस, 'हुआ-लू' ने यह देख लिया, वह दौड़ी-दौड़ी कुतिया के पास आयी और अगली टाँग उठायी...उसी क्षण सारे हिरण, 'झपकू', 'ढिल्लू', 'खड़सींगू', 'छैला', 'सुरमई नयन' तक, 'कलपीठू' तक भी खाना छोड़कर कौतूहल के साथ देखने लगें तब तक मैं उनकी हँसी को समझने लगा था, वह गालों पर नहीं होती, बल्कि आँखों में कुछ चमकता है, तब 'हुआ-लू' की आँखों में यह शरारतपूर्ण भाव विशेष रूप से स्पष्ट दिखायी दे रहा था जब उसने अपनी टाँग उठाई और आनन्द के साथ हल्के-से लाइबा को ठोकर मार दी। अरे, क्या बताऊँ, यह तो देखने वाली बात थी!

जाड़ा पाले के कारण इतना भयंकर न था, जितना कि प्रचण्ड शीत हवाओं के कारण। न पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ़ टिक पाती न कटकों पर, प्रचण्ड आँधियाँ और तूफ़ान उसे उड़ा देते। पर खाइयों, खड्डों, कन्दरों और पर्वतीय घाटियों में बर्फ़ बहुत थी और बर्फ़ पर निशानों की बदौलत ही मैंने एक बार लाल भेड़ियों के हमले की साजिश

का भण्डाफोड़ कर दिया और सीसे से उनकी आवभगत की। एक बार बर्फ़ ने मुझे बताया कि उसी व्याघ्र कन्दर में जहाँ मैंने तेंदुए को मारा था, उसकी मादा दो शावकों के साथ रहती थी। एक बार एक पेड़ के ऊपर जमी बर्फ़ की पपड़ी ने मुझे बताया कि उसके कोटर में भालू सो रहा है—वह छोटा-सा, सफ़ेद छातीवाला निकला। एक बार बर्फ़ पर बाघ के पंजों के निशान भी देखने को मिले।

जब तेज़ हवाओं के साथ कड़कता जाड़ा पड़ने लगा तो सारे हिरण उत्तरी ढलानों से दक्षिणी धुपहली ढलानों पर आ गये और यहीं बलूत की झाड़ियों में चरते थे। अगर उन्हें उत्तरी मृगों—रेनडियरों—की तरह खुरों से हिम खोदकर सूखी घास निकालना आता तो उनके लिए बस चिकनी पपड़ी जैसी बर्फ़ ही दुष्कर होती। पर ये अवशिष्ट जीव शायद कड़ी जलवायु में पूरी तरह नहीं ढल सके और गहरी बर्फ़ के ढेरों में जिनमें झाड़ियाँ डूब जाती हैं वे असहाय हो जाते हैं। उन्हें कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। वसन्त के आने तक कोई एक-आध हफ़्ता और काटना था पर एक गाभिन मादा न काट सकी, वह भुखमरी की शिकार हो गयी। अगर वह गर्भवती न होती तो निःसन्देह वह ज़िन्दा बच जाती। मैंने बाद में देखा कि इस तरह बूढ़ी हिरणियाँ अकसर गर्भ के कारण मौत को गले लगा लेती हैं : इस अन्तिम, घातक प्रयास से ये जीवन मानो सभी जीवधारियों को मरते दम तक अपनी वंशवृद्धि करते रहने का उपदेश देते हैं।

जब वसन्त के पहले कोहरों के बाद ऊपर के खुले स्थान बर्फ़ की पपड़ी से मुक्त हो गये और वहाँ स्वादिष्ट काई निकल आयी एक युवा हिरणी वहाँ चरने के लिए पहुँच गयी और समुद्र की ओर शिला की तरह निकले हिमपिंड पर चढ़ गयी। वसन्त के उष्म कोहरों से भुरभुरा हिमपिण्ड ढह गया, पर अगर वहाँ बर्फ़ की चिकनी पपड़ी न जमी होती तो चपल हिरणी अगली टाँगों के बल ही अपने शरीर को ऊपर उछाल देती। अब तो बर्फ़ीले कगार पर खुरों की खरोंचें ही बची थीं। ऊपर से गिरी समुद्र के किनारे पत्थरों पर मरी पड़ी थी : लोमड़ियों, बिज्जुओं, रेकूनों का भोज, क्या पता कोई अष्टभुज ही उसे चट कर जाये।

जाड़े और गर्मियों के बीच के इस कठिन अन्तरिम काल में ढेरों जीवनों का अन्त हो गया। एक हिरणी पिछली टाँगों पर खड़ी युवा बलूत की सूखी पत्तियाँ खा रही थी। शायद बर्फ़ की चिकनी पपड़ी पर उसकी पिछली टाँगों के कड़े खुर फिसल गये और गिरते समय हिरणी की गर्दन पेड़ की गुलेलनुमा डाल में फँस गयी, मुझे वह इसी हालत में लटकी हुई मिली। एक और दुर्घटना देखी थी, शृंगी बलूत की झाड़ी के ऊपर से कूदा। घनी झाड़ी में से हिरण का शरीर तो निकल गया पर खुरों के पास पिछली टाँगें फँस गयीं। जी हाँ, उनके साथ बड़ी दुर्घटनाएँ होती हैं, पर जैसा कि मैंने ध्यान दिया डर के कारण ही हिरण सबसे अधिक मारे जाते हैं...

वसन्त यह बारिशों और कोहरे की ही ऋतु है। कभी-कभार, पल दो पल के लिए

ही सूरज दर्शन देता है और इतने कम समय में ही ढेरों मुसीबतें खड़ी कर जाता है : उसकी गर्मी के धोखे में आकर पेड़ जाग पड़ते हैं और शाम को उनकी रगों में दौड़ता रस जमकर लकड़ी को फाड़ देता है।

पहाड़ों में कोहरे से छिपी बर्फ़ अदृश्य रूप से पिघलकर धाराओं में बँटकर बहने लगती है। फिर अदृश्य रूप से घनी घास उगती है। और कानों के सहारे ही पक्षियों के महान प्रव्रजन का अनुमान लगाया जा सकता है। एक-दो हफ़्ते बेहद घने कोहरे में बीत जाते हैं, फ़ान्ज़ा के अलावा कुछ नहीं दिखायी पड़ता और अचानक कोई सौभाग्यशाली दिन आ जाता है : सूर्य की किरणों में नहाये हरियाले टीले दिखायी देते हैं और अब तक छायी नीरवता भंग हो जाती है—अचानक चारों ओर से फ़ेज़ेण्ट चिल्ल-पों मचाने लगते हैं।

हिरणों के पुराने सींग झड़ने लगते हैं। मजबूत शृंगियों के सींग पहले झड़ जायेंगे पर नये सींग भी उनके जल्दी उगने लगेंगे और संगम ऋतु से पहले ही से वे तैयार हो जायेंगे। सर्दियों में लूवेन ने कई बार मुझे किसी अमर हिरण के बारे में बताया जिसके सींग मानो कभी नहीं बदलते। लूवेन की सभी किंवदन्तियाँ और कहानियाँ मुझे इसलिए प्रिय थीं कि उनमें सत्य का कोई बीज होता था; हमेशा उसकी किंवदन्तियों को सुनकर मैं उन्हें अपनी समझ के अनुसार बनाने, उनमें निहित अपने लिए लाभकारी गूढ़ार्थ को निकालने का प्रयास करता। अमर हिरण के साथ भी यही बात हुई। जब सभी हिरणों के सींग झड़ गये और हिरणियाँ ब्याने लगीं और ऐसे किसी हिरण की कल्पना ही करना असम्भव था जिसके अस्थिकृत सींग हों एक दिन मैंने पहाड़ी से क्या देखा—चरागाह में बड़े-बड़े शाखी सींगोंवाला एकाकी अमर हिरण चर रहा था। मुझे हिरण की अमरता के रहस्य को सुलझाने की ज़रूरत थी और इसलिए मैंने जिसने कभी भी चीतलों पर गोली न चलाने का संकल्प कर रखा था इस बार उस पर दया न की। और अपनी गोली छोड़ दी। तब न झड़ने वाले सींगों का रहस्य फौरन खुल गया : शायद पतझड़ में संगम ऋतु के समय किसी द्वन्द्व में इस शृंगी को अपनी यौनेंद्रिय से हाथ धोना पड़ गया था और नीचे से पुराने सींगों की ओर प्रवाहित होता नया जीवन रुक गया, नये जीवित शृंग नहींउगते थे और मृत, अस्थिकृत पुराने सींग नहीं बदले। पर वहीं अमरता देखना सबसे सरल होता है, जहाँ बदलाव नहीं होता और पुराने में सब कुछ मृत अस्थि-शेष बनकर ही रह जाता है। हाँ, मृत, अस्थिकृत स्थायी सींग ही शायद अमरता का सभी के लिए अत्यधिक बोधगम्य और सत्य सदृश रूप है। बेशक मैंने जाकर लूवेन को सब बता दिया और खस्सी हिरण के हड्डियों के सींग और घाव के निशानवाला वह सफाचट स्थान दिखाया। निःसन्देह लूवेन ने यही कहा कि यह वह हिरण नहीं है, अमर तो अमर ही होता है और गोली से उसे नहीं मारा जा सकता। मेरे मन में तब यह कड़वा विचार कौंधा कि अपनी किंवदंतियों से घिरा लूवेन खुद अस्थिकृत सींगोंवाले

उस हिरण जैसा है कि जिसके सींग नहीं बदलते। मेरा मन इसलिए कड़वाहट से भर गया कि अनायास ही, और बिना किसी खास, मुख्य बात के, बिना किसी ठोस कारण के मैं इस श्रेष्ठ मानव की संगति से वंचित हो गया, यहाँ हमारी राहें अलग हो गयीं और मैं अकेला रह गया और उत्तम मानव के साथ मेरी वही हालत थी जो पशुओं के बीच होती है : उनसे चाहे कितना ही प्रेम क्यों न करो, कितनी ही घनिष्ठता क्यों न बनाओ पर फिर भी उनके बीच तुम अकेले ही रहोगे और अपनी परम निधि का, जो सम्भव है कि अपनी आवश्यकता से ज्यादा हो, उनके साथ आदान-प्रदान नहीं किया जा सकता।

निःसन्देह, स्वतंत्र विचरने वाले हिरणों की तरह हमारे हिरणों के भी सींग एक-एक करके झड़ रहे थे। सबसे पहले 'सुरमई नयन' के झड़े, उसके बाद शीघ्र ही 'कलपीठू' के, फिर 'झपकू', 'छैले' और 'ढिल्लू' व 'खड़सींगू' बन्धुओं के। सींग झड़ने के बाद की बात है, 'झपकू' एक बार मेरे पास अपनी खास चीं-चीं करता आया और उसने अपना सिर ऐसे झुकाया मानो अपने नदारद सींगों पर मुझे उठानेवाला हो। मैंने उसके सींगों के गूमड़ों को खुजला दिया : मुझे लगा कि उसे वहाँ ज़रूर खुजली हो रही होगी। उसे यह बहुत अच्छा लगा। दूसरी बार वह दूर से ही मुझे देखकर चीं-चीं करता दौड़ पड़ा और मुझे लगभग गिरा ही दिया। मैंने उसको खुजला दिया और हम अपनी-अपनी राह चले गये। पर तीसरी बार जब उसे इसका चस्का पड़ चुका था वह ऐसे दौड़ा आया मानो हुक्म दे रहा हो : चाहता है तो खुजला दे, अगर नहीं तो मैं खुद खुजला लूँगा। बेशक, मैं उस ढीठ का कहना कहाँ माननेवाला था और उसने मेरे बदन से खुद सींग खुजलाने की इच्छा से मुझे इतनी ज़ोर से अपने माथे से धक्का मारा कि मैं दूर बाड़ के पास जा गिरा। अब मेरी तुच्छता को समझकर 'झपकू' मेरी ओर लपका, बेशक, मुझे वह एक बार और ऐसे मारता कि मैं फिर कभी उठ ही न पाता। पर उसी क्षण जब उसने वार करने के लिए सिर झुकाया, मैं अपनी स्थिति को समझ गया, मैंने झट से अपने बायें हाथ से खुर के ऊपर उसकी दायीं टाँग को पकड़ लिया और दायें हाथ से उसकी बगल में ऐसा जबर्दस्त घूँसा मारा कि वह लुढ़क गया। यही नहीं! मैंने बाड़ से खूँटा उखाड़ लिया था और फिर मैंने उसकी जो धुनाई की कि तब से वह हमेशा के लिए सीधा हो गया। वह पहले की तरह आँखें झपकता था, सीटी बजाता था, सींगों के गूमड़ खुजलाने देता था, पर मुझे उसे उँगली से धमकाने की देर थी कि वह चुपचाप चला जाता था। दूसरे हिरण जंगली ही रहे और अपने पास नहीं आने देते थे।

तौलने का काँटा बनाने के लिए मुझे बड़ा सिर खपाना पड़ा, पर अन्ततः मैंने उसे बना ही डाला और काँटे को श्रृंग काटने की मशीन से जोड़ दिया। जब हिरण उस बक्स में घुसता, मैं लीवर दबा देता और मशीन की पेंदी काँटे का पलड़ा बन जाती।

परीक्षण के लिए मैंने दो बिल्कुल एक जैसे हिरणों—'ढिल्लू' और 'खड़सींगू' को चुना। 'ढिल्लू' को मैं सुअर की तरह, जितना वह खा सकता उतना पौष्टिक चारा खिलाता। उसी के तौल के दूसरे हिरण को मैं सभी की तरह सामान्य चारा डालता था। मेरे परीक्षण का उद्देश्य यह ज्ञात करना था कि खिला-पिलाकर मोटे किये गये हिरण के श्रृंग के वजन में कितनी वृद्धि होती है और क्या इस प्रकार धीरे-धीरे इतने बड़े श्रृंग नहीं उगाये जा सकते जितने वजन के चीन में अभी तक अज्ञात हैं। और धीरे-धीरे, समय बीतने के साथ मैं अपनी आँखों से ही देख सकता था कि खिला-पिलाकर मोटे किये गये हिरण के श्रृंगों में कैसा उम्दा खून भर रहा था, उनका आड़ू जैसा रंग कितना सुन्दर चमकता था और उन पर बाल कैसे रुपहले दमकते थे। अरे, मेरी योजनाएँ क्या कम थीं? पर मेरी प्रमुख योजना, मेरा सबसे मनोगत सपना यह था कि मूल्यवान मृग-श्रृंग जमा करके उन्हें बेच दिया जाये और उनकी बिक्री से मिले पैसे से ढेर सारा तार खरीदा जाये और ऐसे तार के जाल से सारी धुँधली पहाड़ी को उसके सारे हिरणों और उनके शत्रुओं : तेंदुओं, भेड़ियों, रैकूनों व बिज्जुओं समेत घेरकर मुख्य भूमि से अलग कर दिया जाये। मैं चार विभागों में बँटे अपने श्रृंग फार्म की कल्पना करता था : पहला मेरी हिरणशाला थी, जहाँ हिरण श्रृंगों की कटाई तक बन्द रहते और फिर दूसरे विभाग, उकाब घोंसला अन्तरीप के अर्द्ध उद्यान में छोड़ दिये जाते; तीसरा विभाग यह धुँधली पहाड़ी का उद्यान होता और अन्त में चौथा, यह धुँधली पहाड़ी से जुड़ा टैगा वन जो जंगली हिरणों का आरक्षित क्षेत्र होता। आगे मैं यह सपना देखता कि नये-नये जंगली पशुओं को पालने के अपने नये धन्धे में मैं लूवेन की सिफारिश से उसके जैसे चीनियों को अपने साथ रखूँगा और ऐसा करूँगा कि वे सभ्यता के प्रलोभनों से निर्लिप्त रहकर खुद यूरोपवासियों की तरह कप्तान बनें और अपनी खुदमुख्तारी कर सकें।

शायद मेरे और भी बहुत से सपने थे पर ये सब सपने जैसाकि मैंने उन्हें बाद में नाम दिया, कालपूर्व थे। हम सबको यह मानना पड़ेगा कि जीवन के ऐसे काल होते हैं जो हम पर निर्भर नहीं करते; लाख कोशिश करो, तुम चाहे कितने ही प्रतिभावान और बुद्धिमान क्यों न हो पर जब तक परिस्थितियाँ नहीं बन जातीं, जब तक समय नहीं आ जाता तब तक तुम्हारी सभी योजनाएँ सपना, कोरी कल्पना बनी रहकर अधर में लटकी रहेंगी। मैं बस एक चीज़ महसूस करता हूँ, जानता हूँ कि मेरी जिन्सेंग की जड़ कहीं पनप रही है और मैं अपने समय की प्रतीक्षा पूरी कर लूँगा।

13

ग्रीष्म ऋतु का गर्म और नम मौसम था। रात को सर्वत्र दीप टिमटिमाते उड़ते। सुबह को बड़ी-बड़ी मकड़ियाँ झाड़ियों और घास के डण्ठलों पर जाले बुनतीं। टैगा में चलते समय लाठी से मकड़ी के जालों को साफ़ करके रास्ता बनाना पड़ता था। अगर सुबह कुछ देर

के लिए सूरज दर्शन देता तो इसके लिए हफ्ते भर का कोहरा माफ किया जा सकता था। और तब मकड़ी का हर जाला इतनी नमी के कारण नन्ही-नन्ही बूँदों से ढक जाता और मोतियों के काम के बेहद सुन्दर कपड़े की तरह जगमगाने लगता। ऐसे ही पल एक हिरणी उस पत्थर के पास आयी जहाँ मैं विश्राम कर रहा था, मन्द-मन्द हवा के कारण वह धोखा खा गयी और मैं पत्थर पर लेटे-लेटे हिरणों के जीवन की इस बड़ी घटना को देख सका। छौने ने जन्म लिया और उसके बदन पर भी माँ जैसी ही चित्तियाँ थीं। और धूप की चित्तियों के बीच वे माँ और हिरनौटे को इस तरह छिपा रही थीं कि आदमी पास में गुजर जाये पर वे उसे नहीं दिखेंगें जन्म लेते ही छौना खड़ा नहीं हो सकता था। हिरणी लेट गयी और बड़ी देर तक थन को उसके मुँह के पास लाने की कोशिश करती रही ताकि उसे समझा सके कि क्या करना है। काफ़ी समय के बाद छौने की समझ में आया और वह थन चूसने लगा। जब माँ को लगा कि अब वह काफ़ी मज़बूत हो गया है, वह खड़ी हो गयी, छौना भी खड़ा हो गया और उसने खड़े-खड़े थन चूसने की कोशिश की पर वह अभी कमज़ोर था और डगमगाकर लेट गया। तब वह भी लेट गयी पर उसकी ओर अपना थन नहीं बढ़ाया : अब छौना खुद जानता था। उस समय मुझे बड़ी ज़ोर की खाँसी आ रही थी; लाख कोशिश करने पर भी, मुँह को हर तरह से बन्द करने के बावजूद भी उसे मेरी दबी खसी सुनायी दे गयी, हमारी आँखें चार हुईं और सीटी बजाये बिना ही वह ग़ायब हो गयी। माँ का भय छौने में भी संचारित हो गया पर सहज ही वह दौड़ नहीं सकता था, और वह दुबककर ज़मीन से चिपक गया। दुश्मन की नज़र से छिपने के लिए, अगोचर, अदृश्य होने के लिए मानो उसे स्वयं यह विश्वास हो गया कि उसका शरीर अनमनीय है और जब मैंने उसे उठाया तो वह उसी तरह गठरी बना रहा और मैंने उसे किसी निर्जीव वस्तु की तरह वापस ज़मीन पर रख दिया। मुझे उसे वहाँ छोड़ते हुए दुख हो रहा था पर हमारे पास गाय नहीं थी, लूवेन दूध नहीं पीता था, वह कहता था : "अगर दूध पियोगे तो गाय को अपनी मम्मी मानना पड़ेगा।" पर अपने आज के अनुभव से मुझे हमारे धन्धे के लिए एक मूल्यवान विचार मिल गया : भविष्य में जब हमारे यहाँ गायें हो जायेंगी हम ब्याने के वक्त लाइबा के साथ टैगा में घूमकर ऐसे पत्थर बनते छौनों को ढूँढ़ लाया करेंगे; ऐसे छौने बड़े होकर शायद बिल्कुल पालतू हिरण बन जायेंगे।

जितने में हिरणियाँ ब्या रही थीं उतने में हिरणों के श्रृंग निकल रहे थे और धीरे-धीरे हिरणियों और हिरणों की चिन्ताएँ एक जैसी हो गयीं : हिरणी अपने छौने का ख्याल रखती और हिरण अपने संवेदनशील और कोमल श्रृंगों का जो हल्की-सी चोट से खून की चटनी बन सकते थे। श्रृंगों के विकास की दृष्टि से 'सुरमई नयन' बहुत आगे था और एक सुबह इन श्रृंगों को कम से कम एक घण्टे तक निहारने के बाद लूवेन बोला :

"आज हमारा काटना माँगता!"

और हम इस बड़े और जोखिमभरे काम की तैयारियाँ करने लगे। लूवेन के अनुसार

'सुरमई नयन' के श्रृंगों का दाम एक हज़ार येन दवा से कम न था! पर सबसे बड़ी चिन्ता दवा की नहीं खुद हिरण की थी : अगर हमसे जरा-सी भी चूक हो गयी तो भयभीत हिरण, जो कोई बाधा नहीं जानता, न केवल अपने श्रृंगों की लाल चटनी बना डालगा बल्कि अपनी टाँगें भी तोड़ बैठेगा। ऐसा कोई था नहीं जो हमें सिखा सके। पुराने ज़माने में खुद लूवेन भी बर्बर और जोखिमभरी विधि से श्रृंग काटता था : चीनी बस हिरण को बांध कर गिरा देते थे।

बेहद जोखिमभरा काम करने के लिए हमने सभी हिरणों को अहाते में छोड़ दिया, थाने में अकेला 'सुरमई नयन' ही बचा था। अब अगर थान से हिरण को छोड़ा जाये तो गलियारे में उसके लिए एक ही रास्ता बचा था—मशीन की ओर जाने वाला; गलियारे का दूसरा रास्ता लटके चलायमान कपाट से बन्द था। इस कपाट में एक छेद था जिसमें से कपाट के पीछे खड़ा लूवेन देख रहा था कि कैसे मैंने थान का दरवाज़ा खोला और गलियारे के दूसरे सिरे पर जाकर उसकी तरह दूसरे कपाट के पीछे छिप गया। लूवेन की तरह मैं भी छेद में से देख रहा था, मेरा हाथ लीवर के हत्थे पर टिका था : जैसे ही हिरण मशीन के बक्स में घुसेगा, मैं लीवर दबा दूँगा और हिरण बगल से मुलायम चटाई से मढ़े तख्तों के सहारे हवा में टाँगें झुलाता अधर में लटक जायेगा। पर अभी इसमें देर थी। थान से निकलकर 'सुरमई नयन' झुटपुटे से भरे गलियारे में जड़वत खड़ा था : वह स्थान जहाँ से वह अहाते में बाहर जाया करता था अब कपाट से बन्द था और दूसरी, अज्ञात दिशा में जाने की बिल्कुल भी इच्छा न हो रही थी। तब लूवेन हल्के से ठेलते हुए कपाट को आगे बढ़ाने लगा। हिरण दुविधा में पड़ा था—खतरनाक दिशा में जाये या कपाट पर टूट पड़े, उसे तोड़ डाले और शायद अपना भी सिर फोड़ बैठे। कपाट पास आ रहा था और उसके पीछे से सुपरिचित स्नेहपूर्ण स्वर पुचकार रहा था :

"मीश्का, मीश्का!"

लूवेन सभी हिरणों को मीश्का कहकर ही पुकारता था।

'सुरमई नयन' शान्त हो गया और उसने सावधानी के साथ खतरनाक दिशा में जाने का फैसला किया। वह कुछ आगे चलता और ठिठककर खड़ा हो जाता, धीरे-धीरे वह उस स्थान की ओर बढ़ रहा था जहाँ अचानक उसके पाँवों तले फ़र्श खिसक जायेगा। यह सोचकर डर लग रहा था कि वह मशीन के ऐन पास पहुँचकर कहीं हमारी चालाकी को भाँप न जाये। उसके पास एक चारा बचा था—वह फ़र्श पर लेट सकता था और तब हम कुछ न कर पाते क्योंकि जबर्दस्ती नहीं की जा सकती थी : उसे बस उछलने की देर थी और किये-कराये पर पानी फिर जाता। सन्नाटा छाया हुआ था, बस घिर्रियों की हल्की-सी चूँ-चूँ सुनायी दे रही थी। ऐसा क्षण आ गया जब हिरण के पास लेटने या जोखिम उठाने के अलावा कोई चारा न बना। और उसके अलग खुर चलायमान फ़र्श पर पड़े, पीछे से कपाट ने पास आकर उसे बेखटके धकेल दिया। मैंने लीवर दबा दिया, कोई गड़गड़ाहट-सी

हुई और पलक झपकते ही लूवेन कपाट हटाकर अतिरिक्त विश्वसनीयता के लिए दोनों ओर से तख्तों से भिंचे हिरण की पीठ पर सवार हो गया। तब मैंने ओट से निकलकर मशीन का ढक्कन खोला और असहाय हिरण के सिर को मशीन की दीवारों की आड़ी टेक से बाँध दिया। श्रृंग काटने की क्रिया बेहद पीड़ादायी होती है, हाथ लगाते ही खून का फौवारा फूट पड़ता है पर पीड़ा क्षणिक ही होती है। युवा हिरण बहुत चिल्लाता है डर के मारे उसकी पुतली चढ़ जाती है, पर बूढ़ा गर्वीला हिरण अक्सर चूँ तक नहीं करता। और 'सुरमई नयन' ऐसा था : उसकी भयंकर स्थिति में, जब टाँगें हवा में झूल रही थीं और उनको टिकाने के लिए कुछ आधार न था, जब जंगली हिरण के लिए क़यामत का दिन आ गया था, ऊपर से बगलों को किसी ने भींच रखा था, पीठ पर एक आदमी सवार था और दूसरा उसके जीवन की खुशी—श्रृंगों को काट रहा था, यह माँ के सामने उसके बच्चे की हत्या के समान ही था—ऐसी हालत में 'सुरमई नयन' ने चिल्लाना तो दूर, आँख की पलक तक न हिलाई। मैं मृगराज के इस उदाहरण को अपने लिए एक आदर्श की तरह सँजोकर रखता हूँ : मैंने खुद देखा है और भलीभाँति जानता हूँ कि अगर स्वयं अपने को अपमानित न करो तो कोई भी परिस्थिति अपमानजनक नहीं होती।

श्रृंग काटकर मैंने हिरण का सिर खोला। लूवेन उसके ऊपर से उतर गया। मैंने बगल के तख्ते हटानेवाला लीवर दबाया और हिरण नीचे बने गड्ढे में गिर गया और वहाँ पाँवों के लिए आधार पाकर गोली की तरह छूटकर अहाते में पहुँच गया। दस मिनट भी नहीं बीतने पाये थे कि जब हमने आम नाँद में सोयाबीन के दाने डाले और सींगकटा 'सुरमई नयन' दर्द को भूलकर अन्य सभी हिरणों के साथ मज़े में दाने चबा रहा था। कठिन काम के बाद मैं खुशी से नाच उठा और लूवेन से लिपट गया और उस बूढ़े की आँखों में खुशी के आँसू आ गये।

और उसी समय, जब हम अपनी विजय मना रहे थे, एक मामूली धारीदार गिलहरी का रूप धारण करके भयंकर मुसीबत दबे पाँव हमारे पास आ रही थी। यहाँ इन गिलहरियों की इतनी भरमार थी कि मैं अब उस गिलहरी पर कोई ध्यान न देता था जो रोज आकर नाँद के नीचे पड़े दानों को खाती थी। अब हुआ यह कि एक दाना 'हुआ-लू' के खुर के पास पड़ा था, गिलहरी उसे उठाने के लिए दौड़ी पर उसी क्षण 'हुआ-लू' ने टाँग बदली और उसके खुर से गिलहरी की दुम भिंच गयी। सहज ही गिलहरी ने उत्तर में अपने दाँत 'हुआ-लू' की टाँग में गड़ा दिये, हिरणी ने सिहरकर उसकी ओर देखा और भगवान जाने उसे वहाँ क्या हौवा दिखायी दिया! ऐसा हाल तब होता है जब कोई खचाखच भरे थियेटर में चिल्ला दे : "आग लग गयी!" और लोग घातक खतरे को महसूस करके अपनी जान बचाने की चिन्ता के सिवा सब कुछ भूलकर ठीक पशुओं की तरह दौड़ पड़ते हैं। इसी तरह अपनी टाँग पर बैठे धारीदार पुच्छल हौवे को देखकर भयभीत 'हुआ-लू' का संत्रास पलक झपकते ही सब हिरणों में फैल गया, स्वाभाविक ही था कि एक-एक टन की शक्ति

से भरे ढाई-ढाई मन के ये सभी हिरण अपनी टाँगों का पूरा ज़ोर लगाकर अपनी टनों की शक्ति से बाड़ को चकनाचूर करके आज़ाद हो गये। गिरती बाड़ का शोर, खरोंचें, बाड़ से टकराकर हुआ दर्द—यह सब 'हुआ-लू' के लिए शायद उसकी टाँग पर बैठे धारीदार हौवे के विकराल स्वरूप की ही अभिव्यक्तियाँ थीं। वह अपनी दुम के सफ़ेद रूमाल को फुलाये दूसरों को रास्ता दिखाती ताबड़तोड़ दौड़ी जा रही थी और सब उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे, आगेवाला हर हिरण अपने से पीछेवाले को अपना रूमाल दिखा रहा था और उन सबके पीछे-पीछे उन्हें उकसाता हुआ अदृश्य धारीदार गिलहरी हौवा दौड़ रहा था।

मैं लुट गया, मैं ठगा रह गया! मैं हिरणों को ढूँढ़ने के लिए, दौड़ा-दौड़ा पहाड़ों में गया मानो भयभीत जंगली जानवरों को भी ढूँढ़ा जा सकता हो। मैंने कहाँ-कहाँ की धूल न फाँकी, पर वे कहीं नहीं मिले, और फिर शाम के झुटपुटे में वे सब अचानक मुझे अपने ऊपरवाली चट्टान पर नज़र आये। दूसरी ओर सिर घुमाकर जब मैंने देखा तो वहाँ भी हिरण नज़र आये, चारों ओर यही हाल था, हमारे खड्ड की चट्टानों पर भी हिरण ही हिरण थे। मैं लगभग पागल ही हो उठा और दयालु लूवेन रात भर मुझसे किसी भी तरह सान्त्वना न दे पाया।

14

हर प्रकार की असफलताओं की खिन्नता और खराब मूड के इलाज की मैंने अचूक दवा ढूँढ़ निकाली थी—ब्रह्ममुहूर्त की वेला में फ़ान्ज़ा से बाहर निकलता, किसी चीज़ पर पीठ टिकाकर खड़ा हो जाता और अपने ध्यान को इस विचार पर केन्द्रित करने लगता कि मेरी जीवन की जड़ पनप रही है, कि इसके लिए समय की ज़रूरत है, इसलिए किसी मुसीबत से हार नहीं मान लेनी चाहिए बल्कि मुसीबत की अटल होनी की तरह अगवानी करनी चाहिए और सोचना चाहिए कि देर-सबेर ज़रूर आयेगा मेरा समय, मेरी सफलताओं का समय। मुझे लगता था कि इस दैनिक अभ्यास से मैंने अपने मनोबल को दृढ़ बना लिया है और हमेशा के लिए अपने को मुसीबत के सामने घुटने टेकने की शर्मनाक कमज़ोरी से सुरक्षित कर लिया है। और अब जीवन की पहली गम्भीर ठोकर खाते ही मेरी सुविचारित परन्तु कुपरीक्षित युक्ति मुझे दगा दे गयी और मैं जिन्सेंग के बारे में भूल गया।

मैं अपनी हिरणशाला के खण्डहरों पर लाइबा के साथ बैठा रुक-रुककर अपना बिगुल बजा रहा था। मेरे दिमाग में यह विचार आया कि अगर मैं तनिक भी अंधविश्वासी, सीधी-सादी पर असहनीय बातों को किन्हीं अबोधगम्य अलौकिक कारणों का परिणाम माननेवाला आदमी होता तो मैं 'हुआ-लू' के बारे में यह सोचे बिना कैसे रह सकता था कि वह अपनी सुन्दरता से मुझे अपने जाल में फँसानेवाली चुड़ैल है : वह देखते-देखते

अतिसुन्दर औरत में बदल गयी और जब मुझे उससे प्रेम हो गया वह अचानक गायब हो गयी। और जब मैं अपने पौरुष की सृजनात्मक शक्ति से इस माया के व्यूह को तोड़ने लगा तो अचानक 'हुआ-लू' ने खुद आकर उसे चकनाचूर कर दिया। और अन्त में गिलहरी के रूप में कोई धारीदार हौवा प्रकट होता है। इसी प्रकार पुरातन काल से मानव अपने को अंधविश्वासों के रक्षादायी कवच से ढँकता आया है : चुड़ैलों और भूत-प्रेतों का स्थान चीज़ें, परिवेश आदि ले लेते हैं और बस बच्चे ही जीवन्त सजीव रहते हैं...

जीवन की गिरती लहर के दौरान मेरे दुखित मस्तिष्क में ऐसे ही ढेरों विचार उथल-पुथल कर रहे थे। पर नयी लहर अब दूर न थी। लाइवा बड़ी देर से अजीब-से ढंग से कभी पीछे की ओर देखती, फिर मुझे ताकने लगती, मानो वहाँ पीछे कुछ आम बात हो रही हो जिसकी वजह से कोई चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं, पर फिर भी पीछे सिर्फ कुछ था ही नहीं बल्कि कुछ हो रहा था। न जाने क्यों मैं कुतिया के मूक इशारों पर कोई ध्यान न दे रहा था और तब तक अपनी विषादपूर्ण सोच में उलझा रहा जब तक मुझे अपने ऐन पीछे स्पष्ट सरसराहट न सुनायी दी। बस तब मैंने मुड़कर देखा और...पीछे मेरे बिल्कुल पास 'हुआ-लू' मिशूल्का के साथ खड़ी थी और भगदड़ के समय ज़मीन पर बिखरे सोयाबीन के दाने चुन रही थी। मेरे हर्ष का न आर था न पार! यही नहीं। एक गिलहरी नहीं, बल्कि पाँचेक छोटे-बड़े धारीदार हौवे भी सोयाबीन के दाने चुगने में मग्न थे। कितनी ही बार मेरे जीवन में ऐसा हो चुका था—अपनी मुसीबतों को समझने और आसान बनाने के लिए पांडित्यपूर्ण व्याख्याओं, रहस्यमय और दूरस्थ शक्तियों का दामन पकड़ता ही था कि अचानक स्वयं जीवन साक्षात प्रकट हो जाता और मुझे, अपने चहेते को ऐसा उपहार देता कि मैं खुशी से पागल हो जाता, मस्ती में झूम-झूमकर नाच उठता। मैं कभी भी उस घड़ी को नहीं भुला सकता जब कोहरे को चीरकर सूर्य प्रकट हुआ और मकड़ी के सराबोर जालों में जड़े हीरे-मोती जगमगा उठे, कितने सारे फूल थे यहाँ और वे भी कैसे-कैसे! वहाँ मोती के हार पहने एज़ेलिया का फूल है, वहाँ लिली का फूल हीराजड़ित टोपी पहने है, उधर निर्माता ने रुपहले तार से एडलवाइस के सफ़ेद फूल को बाँधकर उसे भी अपने प्रातःकालीन आनन्द के निर्माण में खींच लिया। जवाहरातों की ऐसी विपुलता केवल अरबी कहानियों में मिल सकती पर उनकी अद्‌भुत अरबी कल्पना भी मुझ जैसे अमीर और सुखी खलीफ़ा को नहीं रच पाती।

कितनी असीम अक्षतता, सृजन की कितनी अजस्र शक्ति निहित है मानव में और कितने ही कोटि-कोटि मानव आते हैं और अपने जिन्सेंग को समझे बिना, अपने अन्तर्मन की गहराइयों में शक्ति, साहस, हर्ष और सुख के स्रोत को खोजे बिना चले जाते हैं! देखो तो, मेरे पास कितने हिरण थे, और कैसे-कैसे! यही याद करो, छुरी की धार के नीचे 'सुरमई नयन' का आचरण कैसा था! पर भला मुझे उनसे कभी इतनी खुशी हुई

थी जितनी कि अब, जब अकेली 'हुआ-लू' के आने पर मैं खुशी से पागल हो उठा? यह सोचा जा सकता है कि मैं उस समय समझता था कि 'हुआ-लू' की सहायता से मैं ढेरों हिरणों को पकड़ सकता हूँ और इसीलिए इतना खुश हुआ। हरगिज नहीं! मैं खुश इसलिए हुआ कि हिरणों से वियोग ने स्वयं मुझे दिखाया कि मैंने इस काम में कितनी शक्ति लगाई, मुझे इसलिए खुशी हुई कि मैं अब फिर से अपने अद्‌भुत, सुन्दर निर्माण को शुरू कर सकूँगा। और अब मैंने लूवेन के साथ जल्दी-जल्दी खुशी से बाड़ ठीक की और उसे ऊँचा करके ऐसा पुख्ता बना दिया कि हिरण उसे न फाँद सकें, अपनी संयुक्त शक्ति तक से उसे न गिरा सकें। अब मैं धीरे-धीरे समझता जा रहा था कि मेरे काम के लिए बिगुल सुनकर जंगली टैगा से 'हुआ-लू' के आने का सभी भागे हिरणों पर स्वामित्व से कहीं अधिक महत्व है। अब मैं बिना किसी जोखिम के रोज प्रयोग करता था : सवेरे 'हुआ-लू' को खुले चरागाह में छोड़ देता और शाम को उसे बिगुल बजाकर वहाँ से बुला लेता। यही नहीं, हर बार जब मैं उसे बुलाता तो प्रेम से बनाकर कोई चीज़ उसे और मिशूल्का को खाने को देता, इस प्रकार मैं उसे दिन में किसी भी समय वापस बुलाने में सफल हो गया, बस बिगुल बजाने की देर थी और वह टीलों पर सरपट दौड़ती हिरणशाला में आ जाती।

धीरे-धीरे हिरणों की संगम ऋतु पास आ रही थी और एक दिन ऐसे ही अचानक मेरी समझ में आ गया कि अपने हिरणों और हो सके तो नये हिरणों को पकड़ने के लिए मुझे क्या करना चाहिए। एक बार उकाब घोंसले के सामने वाले टीले पर हिरणियों का झुंड आया और न जाने क्यों उनके साथ बड़े-बड़े अस्थिकृत होते सींगों वाला 'ढिल्लू' भी था। पतझड़ अभी शुरू ही हुई थी, अभी तो काकड़ भी नहीं चिंघाड़े थे, पर बेशक जानवरों के बीच भी लोगों की तरह के मनचले होते हैं। यही प्रतीत होता था कि प्रयोग के तौर पर खिला-खिलाकर मोटे किये गये हिरण पर वक़्त से पहले ही मस्ती छा गयी थी और शायद वह अभी बिल्कुल भी न तैयार हिरणियों के साथ छेड़छाड़ के विफल प्रयास भी करता हो। मैं ओट में छिपकर बैठा 'ढिल्लू' को देख रहा था, जब वह टीले के पीछे चला मैंने चुपके से हिरणशाला का फाटक खोल दिया, फाटक से रस्सी बाँध दी और 'हुआ-लू' को घूमने के लिए छोड़ दिया। वह खुशी-खुशी झुण्ड की ओर दौड़ पड़ी पर तभी 'ढिल्लू' की नज़र उस पर पड़ी और वह दौड़ा-दौड़ा उसके पास जाकर उससे मिला। शायद उनके बीच हिरणशाला में हिरणों के लिए असाधारण जीवन जी चुकने के फलस्वरूप कोई दोस्तानापन आ गया हो। पर उसने बेशक अपने को एक निश्चित सीमा तक सूँघने दिया : जैसे ही 'ढिल्लू' ने सीमा लाँघी वह वहाँ से भागकर हिरणियों के झुण्ड में छिप गयी। कोई घण्टा भर बीत चुका था, वह 'ढिल्लू' के बारे में भूल गयी और झुण्ड से बाहर निकली। वह कुछ दूर ही जा पायी थी कि वह झट से आकर भद्दी छेड़खानी करने लगा। उसके पास फिर से झुण्ड में जा

छिपने के अलावा कोई और चारा न बचा था, पर मैंने यह क्षण अपने लिए उचित पाया और पत्थर के पीछे हवा के रुख से बचकर लेटे हुए मैंने एक हाथ से कसकर रस्सी पकड़ी और बिगुल बजा दिया। तब वह फौरन सरपट दौड़ पड़ी और मेरा अनुमान गलत नहीं निकला : वह भी उसके पीछे-पीछे तेजी से दौड़ पड़ा। जब वह दौड़ता हुआ फाटक में घुस रहा था तो उसके मन में तनिक भी संशय न था, जब उसके पीछे फाटक बन्द हो गया तब भी उसने मुड़कर देखा तक न, यही नहीं, मुझे देखकर भी उसे कोई संकोच न हुआ।

मैं कितनी बेसब्री से चीतलों की संगम ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। धीरे-धीरे अंगूर की पत्तियों पर लाली छाने लगी, छोटी पत्तियों वाले मैपिलों की लपटें दहकने लगीं और एक दिन, हल्के-से तूफ़ान के बाद, निस्तब्धता में ताराजड़ित रात को पाले का जन्म हुआ और पिछले साल ही की तरह सितम्बर की उसी रात को, उसी ओर, उसी पहाड़ी पर पहला काकड़ चिंघाड़ा।

दैनिक, चाक्षुष परिवर्तनों के साथ और दो सप्ताह बीत गये। अंगूर पक गया था। पीली चरागाहों में एजेलिया के मुरझाये फूल ज़मीन पर पड़ी लाल तश्तरियों की तरह दिखने लगे, और सारी चरागाह मानो द्वन्द्वों में बहे हिरणों के खून से रंग गयी। तब फिर रात की रहस्यपूर्ण नीरवता में, वहाँ, जहाँ पर्वत के काले कटक ने सप्तर्षि नक्षत्र की पूँछ को काट रखा था, पहला हिरण चिंघाड़ा और प्रतिध्वनि की तरह दूसरे ने उसका उत्तर दिया, और इस प्रतिध्वनि का एक दूरस्थ प्रतिध्वनि ने। अब, जब संगम ऋतु की चिंघाड़ें शुरू हो गयीं, मेरे लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि 'हुआ-लू' का वह दिन न चूक जाये जब हरेक हिरणी अपने निशानों पर ऐसी गन्ध छोड़ती जाती है जिससे सभी श्रृंगी मतवाले हो जाते हैं : दूर से हवा द्वारा लायी गयी या नीचे ज़मीन पर फैली इस गन्ध को पाकर वे खाना-पीना छोड़कर चिंघाड़ते हुए उसे ढूँढ़ने चल पड़ते हैं। इस गन्ध को पाकर श्रृंगी हिरणी के लिए मर-मिटने को तैयार हो जाते हैं पर स्वयं हिरणी इस दिन केवल अठखेलियाँ करना चाहती हैं और कुछ नहीं। चंचल हिरणी खुद नौसिखिया या फूहड़ श्रृंगी के साथ खिलवाड़ करने लगती हैं और जब वह आवेशित होकर उसकी ओर दौड़ता है तो वह सिर पर पाँव रखकर दौड़ पड़ती है मानो उसे यह विश्वास दिलाना चाहती हो कि यह संगम दौड़ ही हिरणी की सबसे अच्छी, एकमात्र मूल्यवान चीज़ है। इसके फलस्वरूप कि 'ढिल्लू' फिर से पकड़ा जा चुका था और मेरे यहाँ रह रहा था, मैं सही-सही उस दिन का पता लगा सकता था जब 'हुआ-लू' ठीक इसी हालत में होगी, शरारत करने और दौड़ने की, पर गन्दे, अपने ही वीर्य में सने श्रृंगी साँडों के वश में हरगिज न आयेगी।

अन्ततः ऐसी शाम आ गयी, मुझे इसके पहले लक्षण दिखायी दिये। मैंने 'हुआ-लू' के गले में रस्सी बाँधी और धीरे-धीरे सुपरिचित पगडण्डी से धुँधली पहाड़ी का चक्कर लगाने लगा। चाँदनी रात थी, सर्वत्र चिंघाड़ें सुनायी दे रही थीं और कभी-कभी सींगों के टकराने की तड़तड़ सुनायी देती। न जाने क्यों चाँदनी रात में हिरणों को डर कम ही लगता है, और अक्सर मुझे अपने बिल्कुल पास कभी सींग दिखायी देते, तो कभी सफ़ेद दुम। और कभी-कभी श्रृंगी इतने पास से चिंघाड़ता कि यह वैसी चिंघाड़ न लगती जैसी दूर से सुनायी देती है, बल्कि विविध ध्वनियों का सरगम होती, पर वे दूरस्थतम चिंघाड़ों की तरह केवल यातना का बखान करतीं—दर्द भरी खरखर, कराह, चीत्कार। अपनी 'हुआ-लू' के साथ मैं अपने मन में नर हिरणों की, इस, पास से बेहद भोंडी कामुक चिंघाड़ से घिन-सी महसूस कर रहा था पर इन कर्कश ध्वनियों में एक भोला-सा सुर भी था जो लगभग किसी रूठे बच्चों के क्रन्दन और सहानुभूति के विनम्र विनीत अनुरोध जैसा लगता था। एक मानव की दृष्टि से मुझे लगता था कि सहानुभूति और संवेदना के केवल इस अनुरोध के कारण ही चिंघाड़ पर ध्यान दे रही थी और इसी के कारण वह अब किसी भी श्रृंगी के साथ खेलने और दौड़ लगाने को तैयार थी। वह अक्सर रुक जाती, कान लगाकर सुनती, उसके शरीर में झुरझुरी दौड़ जाती और बेशक वह सर्वत्र अपनी निशानी छोड़ती जाती। मन्द-मन्द हवा धुँधली पहाड़ी को सहला रही थी और उस क्षण जब श्रृंगी को 'हुआ-लू' की गंध मिलती वह चिंघाड़ना बन्द कर देता और हवा सूँघता-सूँघता निशानी तक पहुँचता पर मनोवांछित गन्ध के साथ उसे सबसे खूंख्वार पशु की भी बू आती ओर वह असमंजस में पड़कर रुक जाता, चिंघाड़ना तक भूल जाता। हाँ, उनमें ऐसा घ्राण है जिसको आदमी अब बिल्कुल भूल चुका है। मैं उस करुण सुर से यह अनुमान लगाता हूँ कि उनमें वैसा ही घ्राण है जैसा हमारी अब फूलों के मामले में बची है, शुरू में सौन्दर्य की कोई छवि बनती है, चाहे क्षण भर के लिए ही कामवासना से मुक्त, और जब इसके बाद वासना फूट पड़ती है और सौन्दर्य से कुछ मिलता नहीं तो हम संगीत का सहारा लेते हैं और वे चिंघाड़ का...

धुँधली पहाड़ी का आलिंगन करती हवा में 'हुआ-लू' की गन्ध पाकर शायद बहुत से श्रृंगी चिंघाड़ना बन्द करके हवा को सूँघते-सूँघते चले होंगे और आदमी की भयंकर बू मिलने पर सहमकर रुक गये होंगे, बड़ी देर तक एक ही स्थान पर खड़े रहने के बाद सतर्कता के साथ गन्ध और निशानियों के सहारे-सहारे आगे ही बढ़ चले होंगे।

15

भोर की वेला में पाला पड़ गया। मैं 'हुआ-लू' को हिरणशाला के अन्दर ले गया, फाटक में फंदा बिछा दिया, और पत्थर की ओट में हवा से बचे स्थान पर लेटकर धुँधली पहाड़ी तक एक कतार में फैले टीलों पर होने वाली घटनाओं की प्रतीक्षा करने लगा। हल्की-सी खुनकी भरी हवा अत्यन्त पारदर्शी थी और बिल्कुल आसमानी समुद्र ने

धुँधली पहाड़ी को घेर रखा था। पाले के सफ़ेद लेस का परिधान पहने पहाड़ी नरकट नील पृष्ठभूमि में अधिकाधिक मनोहारी लग रहा था। धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ने के साथ रमणीयता इतनी बढ़ती जा रही थी कि मानो उसी के कारण मेरे मन की गहराइयों में एक तीव्र पीड़ा शुरू होने लगी थी, वह भी ऐसी कि बस थोड़ी-सी और, और मैं भी हिरण की तरह सिर उठाकर चिंघाड़ उठूँगा। यह मौत की सी पीड़ा कहाँ से आयी अगर चारों ओर इतनी रमणीयता ही रमणीयता है? या क्या पता मैं भी हिरण की तरह सुन्दर छटा को देखकर सुखाभास की अपेक्षा करता हूँ पर उसे न पाकर यातना झेल रहा हूँ और हिरण की तरह ही मैं भी समझो चिंघाड़ने को तैयार ही हूँ?

जब दिन अच्छी तरह निकल आया और सब चमचमाने लगा, धुँधली पहाड़ी की तिरछी पगडण्डियों पर जहाँ-तहाँ शृंगी दिखायी पड़े, शुरू में वे दूरी के कारण मक्खियों की तरह लगे और फिर बड़े होने लगे, कुछ देर के लिए वे कन्दरों से जुड़े खड्डों में ओझल हो जाते और फिर पहले टीले के पीछे से दिखायी पड़ते, फिर दूसरे के पीछे से और जब शृंगी अन्तिम टीले पर चढ़ने लगते तो उसके पीछे से शुरू में उनके सींग दिखायी पड़ते—ऐसा प्रतीत होता मानो ज़मीन में से सींग उग रहे हों। उकाब घोंसला अन्तरीप के सामने वाले टीले पर एकाकी पाइन वृक्ष खड़ा था—तूफ़ानों से अनवरत संघर्ष में तपा। वह पूरा गूमड़ों से ढका था, तूफ़ान के प्रहार की निशानी—हरेक गूमड़ा—लम्बी-लम्बी गहरी हरी सुइयों जैसी पत्तियों वाली अजेय टहनी को थामे था और खुद तना भी टेढ़ा-मेढ़ा था, पर फिर भी यह ऊँचा विजयी तना था! मुरझाये एजेलिया पुष्पों के रक्ताभ धब्बोंवाली पीली चरागाह में उसकी छाया हरी घनी घास और बलूत की झाड़ियोंवाली खाई तक फैली थी। यह खाई एक छोटे-से कन्दर की तरह थी। वह गहरी होती-होती सागर तट तक चली जाती थी, उसकी पेंदी में पत्थरों के बीच आँख-मिचौनी खेलती नन्ही-सी धारा दौड़ती थी। हाँ, तो इसी खाई में हिरनौटों के साथ हिरणियों का छोटा-सा झुण्ड चर रहा था, यहाँ दो शृंगी भी थे, रंग उनका बेहद गहरा था और वे बड़े शान्त थे, हिरणियों के साथ खिलवाड़ नहीं कर रहे थे, न कुछ खा रहे थे, न ही चिंघाड़ रहे थे। वे बस निश्चल खड़े थे किन्हीं तपस्वियों की तरह। टीले के पीछे से एक असाधारण भीमकाय, अत्यन्त वैभवशाली हिरण निकला पर बिना सींगोंवाला। मृगराज के राजसी वैभवशाला पर साथ ही सींगों के स्थान पर सिर पर गूमड़ों वाला यह हिरण बड़ा अजीब लग रहा था। बेशक, 'सुरमई नयन' भी मेरे चिह्नों पर चलता पहाड़ों से आ गया था और अब वह सीधा हमारे खुले फाटक को ताक रहा था। मैंने 'ढिल्लू' की तरह उसे भी फँसाने का निश्चय किया। चुपके से मैंने दरवाज़ा खोल दिया, फाटक से बँधी रस्सी तैयार कर दी, विदा करते हुए 'हुआ-लू' को सहलाया और छोड़ दिया। वह खुशी-खुशी बाहर निकली और धीरे-धीरे शान के साथ खाई में चरते झुण्ड की ओर जाने लगी। पर 'सुरमई नयन' समझ गया कि झुण्ड से उसे इतनी जल्दी नहीं निकलवाया जा सकेगा और वह उसका रास्ता काटने के लिए चौकड़ी भरता सीधा दौड़ा और उसे रोकने में सफल हो गया। अभी हाल ही में तो मैंने इस हिरण को उसके सुन्दर रूप में देखा था और अब वह सिर से पाँव तक कीचड़ में नहाया मैला-कुचैला खड़ा था, पे. की मांसपेशियाँ फड़क-फड़ककर सिकुड़ रही थीं, निरन्तर चिंघाड़ने के कारण गर्दन फूली हुई थी, आँखों में खून उतर आया था। इसी वीभत्स राक्षस से बचने के लिए 'हुआ-लू' पेड़ की ओर दौड़ी और वह भी उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा और दोनों टीले की आड़ में ओझल हो गये। तब मैंने अपना बिगुल उठाया और कुछ देर तक बजाया। प्रतीत होता था कि 'हुआ-लू' ने उसे सुन लिया और वह मुड़कर उस खाई के ऐन सिरे पर दिखायी दी जहाँ हिरणियों का झुण्ड चर रहा था और दो काले तपस्वी खड़े थे। अगर झाड़ियों से भरी खाई उसके रास्ते में न आ जाती तो वह बेशक, मेरे पास दौड़ी आती अपने पीछे-पीछे साँड को भी ज़रूर ले आती, पर झाड़ियों में वह कुछ अटक गयी और यहीं 'सुरमई नयन' ने उसे धर दबोचा।

...क्या उस समय उसके दिमाग में हम लोगों की तरह, अपनी हिरणसहज, विशेष घ्राण शक्ति द्वारा निरूपित निरपेक्ष सौन्दर्य की कोई छवि थी, नहीं, मेरे विचार में अब उसके दिमाग में इस छवि का कोई नामोनिशान न रहा था, उसके सामने सौन्दर्य नहीं, बल्कि मज़ेदार आनन्दभरा जीवन था। वह साँड की तरह हवा में सीखपा हो गया। और अचानक वहाँ हवा में कुछ मिला ही नहीं। जी हाँ, ऐसा भी होता है : लगता है कि बस अभी बात बनने वाली है और फिर सब पर पानी फिर जाता है! 'हुआ-लू' ने बचाव की एकमात्र युक्ति अपनायी : वह ज़मीन पर लेट गयी। तब सब कुछ पर पानी फिर गया, सौन्दर्य पर भी और मस्ती के जीवन पर भी। और यह देखकर कि वास्तव में कुछ नहीं रहा, 'सुरमई नयन' ने अपना सिर पीछे को लुढ़काया और उसके मुँह से पतली-सी सीटी निकली और फिर यह पतली सीटी उल्टे बजते सायरन की तरह धीरे-धीरे भारी चिंघाड़ में बदलती चली गयी। सीटी और चिंघाड़ के बीच के अन्तराल में सभी साँडों की तरह एक सुर न जाने करुणा का था या दिल को लगी ठेस का था पर यही सुर हिरणों के संगीत की उत्पत्ति को समझने की कुंजी था। और मैं अपने बारे में भी सोच रहा था : हाँ-हाँ, मेरी प्राणहर पीड़ा का भी, बेशक यही कारण था कि हिरण की तरह मैं भी एक समय सौन्दर्य और मस्ती के जीवन में भेद न कर सका, पर मस्ती का जीवन अचानक लुप्त हो गया और इसी कारण मुझे सौन्दर्य की अनुभूति प्राणहर पीड़ा के संग होती है।

अगर मैं संगम ऋतु में हिरणों के व्यवहार का एक वैज्ञानिक के रूप में सही-सही अनुसंधान शुरू करता तो मेरा सबसे पहले कदम यही होता कि मैं हिरणों को अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर समझना छोड़ देता। पर मैं तो स्वयं इस निर्जन में बिल्कुल किसी पशु की तरह यातना झेल रहा था और इससे मुझे उनके प्रति सगेपन की

अनुभूति हो रही थी, मुझे उन पर तरस आ रहा था, सगेपन की बदौलत मैं उन्हें महसूस कर रहा था : वह लेटी है, बला टलने की ताक में और वह उसके सिर पर खड़ा है अपमान की यातना सहता, घुल-घुलकर दुबला हुआ, कीचड़ में सना, भव्य सींगों के स्थान पर हड्डीले गुमड़ोंवाला टेगा का निष्कासित स्वामी। यह इतना स्पष्ट है, इतना सीधा-सरल है कि अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन है—संघर्ष! अब सभी प्रश्न घूम-फिरकर यहीं अटक जाते : या तो मैं अकेला, या तू, या मैं मार दूँगा, या खुद मर जाऊँगा...

खाई से आकर हिरणियों के झुण्ड ने अपनी बहन 'हुआ-लू' को घेर लिया मानो वे उसे समझती हों, उससे सहानुभूति रखती हों। उधर हरम का मालिक 'सुरमई नयन' भावी मज़ेदार जिन्दगी की प्रतीक्षा में खड़ा था, वह ढूँढ़ रहा था कि बस कोई ऐसा मिल जाये जिसके साथ फटाफट लोहा लिया जा सके। दोनों तपस्वी, एक छैसिंगा और दूसरा चौसिंगा पाँव गड़ाये खड़े थे, उन्हें एक भी कदम आगे बढ़ने की हिम्मत न हो रही थी। या क्या पता वे समझते हों कि सिर्फ़ सींगों के बल यहाँ कुछ नहीं किया जा सकता? या वे अपने राजा को सींगकटा देखकर अभी तक हक्के-बक्के हों? या उन्होंने देख लिया कि 'कलपीठू', 'खड़सींगू', 'छैला' तथा बहुत-से अन्य मंजे हुए योद्धा जल्दी-जल्दी यहाँ पहुँच रहे हैं? न जाने क्यों 'कलपीठू' टीले पर पेड़ के पास खड़ा हो गया, उसे और निकट आने की इच्छा न हुई। हमेशा की तरह उसके मन में कोई मैल था, मानो उसने कोई नापाक मंसूबा बना रखा था। टीले पर 'कलपीठू' और उस खाई के बीच, जहाँ रौद्र मुद्रा में 'सुरमई नयन' तैयार खड़ा था, ढलान पर आठ विभिन्न शृंगी खड़े थे जिन्हें मैं बिल्कुल नहीं जानता था। क्या पता 'कलपीठू' की योजना यह हो कि आठों के आठों शृंगियों को बारी-बारी से 'सुरमई नयन' के साथ लड़ने दिया जाये और अगर 'सुरमई नयन' ने एक-एक करके सभी को हरा दिया तो खुद थके-हारे पर टूट पड़ेगा या बस, एक ही बार काफ़ी हो काम तमाम करने के लिए?

'सुरमई नयन' ने शुरू में नाक सिकोड़कर ढलान पर सबसे आगे वाले हिरण की ओर उपेक्षापूर्ण फूत्कार छोड़ी। अक्सर यही काफ़ी होता है और प्रतिद्वन्द्वी पीठ दिखा देता है। पर शृंगी ने सींगकटे की चेतावनी पर कोई ध्यान न दिया। 'सुरमई नयन' ने जीभ फटकारी। पर वह वैसे का वैसा ही खड़ा रहा। उल्टे उस डीठ ने अपनी नाक सिकोड़ी। तब टेगा का स्वामी उसकी ओर लपका पर फिर भी वह अज्ञात शृंगी भागा नहीं बल्कि उल्टे उसने अपना सींगोंवाला सिर झुकाया और खुद दो कदम आगे बढ़ा। शायद वह अभी जवान, कुछ अधिक ही जोशीला हिरण था, उसे यह नहीं पता था कि 'सुरमई नयन' की टक्कर क्या होती है। माथे पर हड्डीले गुमड़ों की एक ही चोट से उसके घुटने मुड़ गये और ऐसे मामलों में सभी योद्धाओं की तरह 'सुरमई नयन' ने उसकी बगल में दिल के ऊपर वाले स्थान पर ऐसे ज़ोर से प्रहार किया कि उसके हड्डीले

गुमड़ों से हिरण की पसलियाँ टूट गयीं और उनके टुकड़े दिल में चुभ गये। सूरमा अब फिर कभी खड़ा न हो सका। तब 'सुरमई नयन' ने दूसरे की ओर नाक सिकोड़ी और वह भाग खड़ा हुआ जीभ लपलपाकर वह तीसरे की ओर दौड़ा तब वह भी भाग खड़ा हुआ और उसके पीछे-पीछे सिवाय 'कलपीठू' के सब भाग पड़े। और जब 'सुरमई नयन' ने उसकी ओर नाक सिकोड़ी तो 'कलपीठू' ने उत्तर में खुद अपनी नाक सिकोड़ दी और हमला करने के लिए आगे बढ़ा।

टीले पर खड़े एकाकी पेड़ के पास कभी दूसरा पेड़ भी हुआ करता था पर अब उसका ठूँठ ही बचा था। इसी ठूँठ के पास दुश्मनों की टक्कर हुई, शायद वे दोनों ही अगली टाँगों को टिकाने के लिए उसका फायदा उठाने का इरादा रखते हों। दोनों ठूँठ से अड़ गये और एक दूसरे को माथे भिड़ाकर धकेलने लगे। वे बड़ी देर तक ठूँठ के इर्दगिर्द चक्कर काटते रहे पर कोई भी हावी न हो पाया, अब ठूँठ के चारों ओर खुरों से खुदा गड्ढा नज़र आने लगा था। अचानक एक नये प्रयास के समय ठूँठ उखड़ गया और टाँगों के नीचे से खिसककर दूर जा पड़ा। तब दोनों योद्धा एक दूसरे पर लुढ़क गये। उसी क्षण अचानक झाड़ी के पीछे से 'हुआ-लू' दौड़ती हुई निकली, वह 'छैले' से पिण्ड छुड़ाने के लिए दौड़ पड़ी और मैंने हिरणों का बिगुल बजा दिया। 'हुआ-लू' सीधी मेरी ओर दौड़ पड़ी और उसके पीछे-पीछे 'छैला' भी। योद्धाओं ने भी 'छैले' को देख लिया और वे भी दौड़ पड़े और उनके पीछे-पीछे सारे शृंगी भी। और हिरणों का पूरा का पूरा झुण्ड मेरे बिल्कुल पास से गुजर गया। जब तक वे अन्तरीप के सिरे तक दौड़ते पहुँचे मैं तब तक न केवल फाटक बन्द कर चुका था बल्कि मैंने उसके आसपास की बाड़ की जाँच भी कर ली और कुछ कमज़ोर स्थानों को पुख्ता तक कर डाला।

मैं द्वन्द्व की समाप्ति के ठीक पहले ही 'चीड़ चट्टानों' पर पहुँचा और अब मैं न अपनी उपस्थिति से और न ही हवा में गोलियाँ चलाकर उन बढ़िया हिरणों को बचा सकता था। 'सुरमई नयन' और 'कलपीठू' ऊँचे कगार पर लड़ रहे थे, नीचे सागर तट की नुकीली चट्टानें थीं। अगर 'सुरमई नयन' के सींग होते तो बेशक द्वन्द्व कब का खत्म हो चुका होता। पर सींगों से वार झेलने की सम्भावना से वंचित सींगकटे 'सुरमई नयन' की अरक्षित गर्दन बुरी तरह घायल हो चुकी थी। और जब बहुत खून बह जाने के कारण वह अगली टाँगों पर गिरा तो उसके मुँह से खून की धारा बह रही थी। 'कलपीठू' ने उसकी बगल पर वार किया और अपने सींग से उसके दिल को बींध दिया, पर तभी अपने जीवन के अन्तिम क्षण में 'सुरमई नयन' को ऊपर से नीचे देखना नसीब हो गया, क्या पता वह चट्टानों के पास हमेशा बेचैनी से थपेड़े मारती समुद्री लहरों के सफ़ेद फेन को लाल होते भी देख सका हो। फिर 'सुरमई नयन' लड़खड़ाकर गिरा और उसने दम तोड़ दिया।

चट्टानों के बीच जहाँ-तहाँ टकराते सींगों की तड़-तड़, फूत्कारें और नीचे गिरते

पत्थरों की खड़-खड़ सुनायी दे रही थी। और अब ये सभी हिरण मेरे थे।

16

तब से दस वर्ष बीत चुके थे जब मैंने पालतू 'हुआ-लू' की सहायता से ढेरों श्रृंगी पकड़े और बड़े हिरण फार्म का निर्माण शुरू किया था। मेरा मीत नहीं आया और मैं अकेला निर्माण कर रहा था। एक साल और बीत गया। मैं अभी भी अकेला था और मुझे कोई चैन न था। एक साल और ऐसा होता है कि प्रतीक्षा में कोई अवधि बीत जाती है और प्रिय, कहीं दूर रहने वाले व्यक्ति की याद ऐसे आने लगती है मानो वह मर चुका हो। और अचानक जब आप और आपका मित्र पहचान से परे बदल चुके होते हैं, एक दूसरे से मिलना हो जाता है। कितना भयंकर लगता है यह! आपके चेहरे का रंग उड़ जाता है, सिहरकर आप समय की मार से तराशे नाक-नक्श को पहचानने की ऊहापोह में पड़ जाते हैं, और अन्ततः आप आवाज़ से उसे पहचान लेते हैं। धीरे-धीरे मित्र के साथ आपबीती को कुरेदते हुए आप क्रमशः अचेतन रूप से मानो किसी को क्षमा करने लगते हैं, मन बेहद हल्का होने लगता है : और अन्ततः मनोवांछित मिलन होता है : जीवन के लौटे उल्लास की धारा में डुबकी लगाकर दोनों मित्र एक दूसरे के लिए वैसे ही युवा हो जाते हैं जैसे पहले थे। इसी को मैं जीवन की जड़ जिन्सेंग का प्रभाव मानता हूँ। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जीवन की जड़ की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह प्रिय व्यक्ति जिसे आप सदा के लिए खो चुके होते हैं आपको किसी दूसरे में मिलता है और आप इस नये व्यक्ति से खोये मीत की तरह ही प्रेम करने लगते हैं। इसे भी मैं जीवन की जड़ जिन्सेंग का असर मानता हूँ। इस रहस्यमय जड़ के बारे में सभी अन्य धारणाओं को मैं या तो अन्धविश्वास मानता हूँ, या वे उसके चिकित्साशास्त्रीय पक्ष से सम्बन्धित होती है। हाँ, तो साल के बाद साल बीतने के इस क्रम में जब मीत न आया तो मैं उसे भूलने लगा और अन्ततः बिल्कुल भूल गया कि टैगा में कहीं मेरी अपनी जीवन की जड़ उगती ही जा रही है। मेरे चारों ओर सब कुछ इतना बदल चुका था : जुसुख़े के किनारे की बस्ती अब एक छोटा शहर बन चुकी थी और यहाँ तरह-तरह के ढेरों लोग जमा हो चुके थे। अपने ज़रूरी कामों से मैं अक्सर मास्को, टोकियो, शंघाई की यात्रा पर जाता रहता हूँ। टैगा की अपेक्षा इन बड़े शहरों की सड़कों पर मुझे अपने जिन्सेंग की अधिक याद आती है। नयी संस्कृति के सभी सेवकों के साथ मैं भी महसूस करता हूँ कि प्रकृति के टैगा से जीवन की जड़ हमारी सृजनात्मक प्रकृति में आ गयी और कला, विज्ञान व उपयोगी कार्यों के हमारे टैगा में जीवन की जड़ के खोजी, प्रकृति के टैगा में अवशिष्ट जड़ के खोजियों की अपेक्षा अपने लक्ष्य के काफ़ी निकट हैं।

काम में मैं रमा रहता हूँ और बेशक यह मुझे एकाकीपन के विषाद से बचाये रखता है। पर लो मेरे छड़ेपन की अवधि पूरी हो गयी। हमारी भेंट हुई और हम बड़ी देर तक एक दूसरे से सही बातें न कह पा रहे थे। यहीं वह पेड़ था जिस पर बैठी वह कभी जलसाहियों के कंकालों की सुन्दर पिटारियाँ जमा कर रही थी जिन्हें तूफ़ानों और लहरों ने इस पेड़ की डालों पर टाँग दिया था। अब जुसुख़े ने इस पेड़ को बालू से इतना ढक दिया है कि बड़ी मुश्किल से उस स्थान को पहचाना जासकता है जहाँ पुष्प-मृग नारी रूप में मेरे समक्ष प्रकट हुआ था। यहाँ तट पर, महासागर की श्वेत किनारी पर, जलसाहियों, सीपियों, तारामीनों के साथ मौन खड़े हम महाकाल की टिक-टिक सुनते अपने अल्पजीवन की घड़ियों को मिला रहे थे।

देखो पहाड़ भी कितनी जल्दी नष्ट हो जाते हैं! वहाँ चट्टान लटकी हुई थी, उसके नीचे से हिरण, काकड़, रैकून समुद्र तट की ओर, खारे पानी की ओर जाते थे और हम भी कभी हाथों में हाथ डालकर पशुओं के साथ एक ही पगडण्डी पर चले थे। अब तूफ़ान ने उस चट्टान को गिरा दिया था और पगडण्डी बिखरे पत्थरों के ढेर के किनारे-किनारे जाती थी। उस स्थान पर जहाँ लूवेन की कागजमढ़ी खिड़कियोंवाली फ़ान्ज़ा थी अब शोधशाला की चौड़ी-चौड़ी इटालियन खिड़कियोंवाली बड़ी इमारत खड़ी थी। विशाल हिरण फार्म में, जिसकी कई किलोमीटर लम्बी गेल्वानाइज्ड जाली की बाड़ ने सारी धुँधली पहाड़ी को घेर रखा था, अब पुराने हिरणों में से इक्के-दुक्के ही बचे थे, पर 'हुआ-लू' ज़िन्दा थी और पालतू जानवर की तरह सर्वत्र मुक्त रूप से घूमती थी।

हम विराट देवदार के नीचे लूवेन की क़ब्र पर गये। चीनियों ने पेड़ के तने को काटकर छोटा-सा देवालय बना दिया था जहाँ वे अपना पूजा-पाठ करते और क़ागज़ के दीप जलाते थे। बस यहीं अपने सबसे प्रिय व्यक्ति के जीवन का ब्योरा सुनाते समय मुझे अचानक जिन्सेंग की अपनी जड़ की याद आ गयी जो गाती घाटी के पास कहीं उग रही थी। अपना कौतूहल शान्त करने के लिए हम क्यों न चलें जिन्सेंग को देखने के वास्ते? और हम दोनों एक ज़माने में खोजी जा चुकी जड़ को फिर से खोजने के लिए चल पड़े।

निःसन्देह, मैं लूवेन द्वारा छोड़े गये निशानों को कब का भूल चुका था, पर इतना पता था कि गाती घाटी का रास्ता सात चोटियों वाले खड्ड के तीसरे भालू कन्दर से होता हुआ जाता था। तो हमने खड्ड को पार किया और कन्दर के सहारे-सहारे ऊपर तक चढ़ गये। गाती घाटी में सब पहले जैसा ही था, वे ही विराट छितरे वृक्ष और चहचहाते पक्षी। पर जब हम प्राचीन सीढ़ीनुमा पाट से घने जंगल में उतरे जहाँ छायाप्रिय जड़ी-बूटियाँ होती हैं, मैं आगे का रास्ता भूल गया। हम बड़ी देर तक आगे-पीछे घूमते रहे, इस आशा से कि वह स्थान मिल जाये जहाँ मैं और लूवेन बड़ी देर तक मौन होकर

बैठे रहे थे।

कितनी ही बार मुझे रात को विस्मृत स्थानों को ढूंढ़ना पड़ चुका है, और ढूँढने का सबसे बेहतर तरीका है—अपने मन में कोई ऐसा सवाल ढूँढ़ता हूँ जो उस जमाने में मुझे सता रहा होता था, और अचानक खुमियों की खास तौर से तीखी महक को महसूस करके अन्दाज़ा लगाता हूँ कि यह सवाल इसी महक के वातावरण में मन आया था और वह स्थान जिसे ढूँढ़ रहा हूँ वहीं कहीं होना चाहिए, तब ध्यान से चारों ओर देखकर वह स्थान याद आ जाता है। अब की बार भी ऐसा ही हुआ, जब हम अन्ततः टटोलते-टटालते सही स्थान पर पहुँचे और हमारा शान्त वार्तालाप रुक गया, अचानक सोते की धारा से सुनायी दिया :

"बोल-बोल-बोल!"

और तब सभी संगीतकार, गाती घाटी के सभी प्राणी गाने-बजाने लगे और सम्पूर्ण सजीव नीरवता मुखरित होकर पुकारने लगी :

"बोल-बोल-बोल!"

इसके बाद जब मुझे जंगली सेब का वह तना दिखायी दे गया जिसके ऊपर से हम लूवेन के साथ धारा के उस पार गये थे मुझे एक-एक चीज़ याद आ गयी। उसी स्थान पर, जहाँ कभी हम घुटनों के बल बैठे थे, वह पूजा कर रहा था और मैं सोच रहा था, अब हम भी रुके और सावधानी के साथ छायाप्रिय घास को हाथों से हटाने लगे। हम इतनी रुचि और आकुलता के साथ यह काम कर रहे थे कि हमारे सम्बन्धों में कुछ मामूली-सा जो तनाव था वह बिल्कुल खत्म हो गया, हममें तेजी से घनिष्ठता आने लगी और अचानक हमें जिन्सेंग की जड़ दिखायी दी। फिर मैं बड़ी देर तक देवदार की छाल से पिटारी बनाने में लगा रहा, ठीक वैसी जैसी मैंने तब, बहुत पहले, मंचूरियनों के पास देखी थी, फिर हमने साथ मिलकर देवदार की छाल को लाइम वृक्ष के तन्तुओं से सिला। बड़ी सावधानी के साथ हम जड़ को खोद रहे थे ताकि उसे बिल्कुल भी क्षति न पहुँचे, वह उस जड़ से बहुत मिलती-जुलती थी जो तब मैंने मंचूरियनों के पास देखी थी : उसकी आकृति नंगे आदमी जैसी थी, हाथ भी थे और पाँव भी, हाथ पर उँगलियाँ-सी थीं, गर्दन भी, सिर भी और सिर पर चोटी भी। हमने पिटारी में मिट्टी बिछायी, वही जिसमें यह जड़ लगी थी और अत्यन्त सावधानी के साथ उसे पैक करके हम उस स्थान पर लौटे जहाँ कभी मैं और लूवेन सजीव नीरवता को सुनते हुए चुप बैठे अपनी-अपनी सोच में डूबे थे। अब हम इतना स्वाधीन मौन धारण किये देर तक नहीं बैठे रह सके, सोते की धारा ने शुरू कर दिया :

'बोल-बोल-बोल!"

गाती घाटी के संगीतकारों ने अपना संगीत शुरू कर दिया और हमने आपस में जी भरकर बातें कीं।

वैसे तो मैं नहीं बताना चाहता था पर अगर बात छेड़ी ही है तो आखिर तक बता देनी चाहिए। यह वही औरत नहीं थी, पर मैं कहता हूँ न कि जीवन की जड़ की शक्ति ही ऐसी है कि उसमें मैंने अपने को पाया और दूसरी नारी से मुझे वैसे ही प्रेम हो गया जैसे अपनी तरुणाई की मनोवांछित युवती से। जी हाँ, मुझे लगता है कि जीवन की जड़ की सृजनात्मक शक्ति इसी में है कि मानव अहम से निकलकर किसी दूसरे में अपने को निखरता देखे।

अब मेरे पास मुझे निरन्तर आकर्षित करने वाला धंधा है जिसे मैंने स्वयं स्थापित किया और जिससे मैं महसूस करता हूँ मानो हम ज्ञान तथा प्रेम की अत्यन्त उग्र आधुनिक माँग से सज्जित होकर वन्य पशुओं को पालतू बनाने के उसी कार्य की ओर लौट रहे हैं जिसे हमारी सभ्यता के उषाकाल में हमारे पूर्वज करते थे। रोज मैं आधुनिक ज्ञान की पद्धतियों को आत्मीयता की उस शक्ति से जोड़ने के अवसर खोजता हूँ जिसे मैंने लूवेन से लिया है। तो अब मेरे पास रोचक काम है। पत्नी में मुझे एक मित्र मिला और बच्चे मेरे प्यारे हैं। अगर लोगों को देखा जाये कि कैसे वे रहते हैं तो मैं अपने को पृथ्वी पर एक सबसे सुखी आदमी कह सकता हूँ। पर मैं फिर से कहता हूँ : अगर बात शुरू की ही है तो आखिर तक बतानी चाहिए! मेरे जीवन में एक मामूली-सी बात है, अगर निरपेक्ष रूप से देखा जाये तो मेरे जीवन के सामान्य क्रम पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, पर कभी-कभी मुझे लगता है कि यह मामूली-सी बात जीवन की सृष्टि का वैसा ही आदिबिन्दु है जैसे हिरणों के सींग बदलना। हर साल कोहरोंवाली उसी वसन्त ऋतु में जब हिरणों के पुराने मृत, अस्थिकृत सींग गिरते हैं तो मुझमें भी हिरणों की तरह कुछ नवीनीकरण-सा होता है। कई दिन तक मैं न प्रयोगशाला में काम कर पाता हूँ, न पुस्तकालय में। अपने सुखी परिवार में भी मुझे न चैन मिलता है न आराम। तीव्र पीड़ा और विषाद के साथ कोई अन्धी शक्ति मुझे घर से बाहर खदेड़ती है और मैं जंगल में, पहाड़ों में भटकता रहता हूँ और अन्ततः मैं ज़रूर उस चट्टान के पास पहुँच जाता हूँ जिसकी असंख्य अश्रु-ग्रंथियों जैसी दरारों से नमी रिस-रिसकर बड़ी-बड़ी बूँदों में जमा हो जाती है और लगता है कि यह चट्टान सदा रोती रहती है। यह आदमी नहीं—पत्थर है, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पत्थर में अनुभूति की क्षमता नहीं होती पर फिर भी मैं उससे अपना दिल ऐसे जोड़ देता हूँ कि मुझे भी कहीं से उसकी धड़कनें सुनायी देती हैं और तब मैं बीते दिनों को याद करता हूँ और बिल्कुल वैसा ही हो जाता हूँ जैसा अपनी जवानी में था। अंगूर के तम्बू में मेरी आँखों के सामने 'हुआ-लू' अपना नन्हा-सा खुर घुसेड़ेगी। वे बीते दिन अपना सारा दर्द लाकर मुझे घेर लेते हैं और तब ऐसे मानो मुझे कुछ प्राप्त ही न हुआ हो, मैं अपने सच्चे दोस्त, पत्थर-दिल से मुख खोलकर कहता हूँ :

"ओ, शिकारी-शिकारी तब तूने उसके खुर क्यों नहीं पकड़ लिये!"

ऐसा लगता है कि इन दर्द भरे दिनों में मैं अपने में से वह सब गिरा देता हूँ जो मैंने बनाया, उसी तरह जैसे हिरण अपने सींग गिरा देता है और फिर प्रयोगशाला में, अपने परिवार में लौट आता हूँ और फिर से काम शुरू कर देता हूँ तथा इस प्रकार अन्य अनाम और नामी सेवकों-साधकों के साथ पृथ्वी पर लोगों के नये, बेहतर जीवन के निरूपण की ब्रह्ममुहूर्त की वेला में प्रवेश करता हूँ।

1933

अनु.—विनय शुक्ल

सूरज का ख़ज़ाना

1

एक बार पेरेस्लाव्ल-जलेस्स्की नगर के बाहर, 'ब्लूदोवो दलदल'* के निकटवर्ती एक गाँव में दो बच्चे यतीम हो गये। उनकी माँ किसी बीमारी से चल बसी और पिता ने महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में वीरगति पायी।

हम इसी गाँव में, इनके घर से केवल दो घर दूर रहते थे और हमने तथा अन्य पड़ोसियों ने इनकी यथासम्भव सहायता की। दोनों बच्चे बहुत प्यारे थे। नास्त्या लम्बी टाँगों वाली और सुनहरे रंग की मुर्गी के समान थी। उसके बाल न तो काले ओर न भूरे ही थे। उनमें सुनहरेपन का हल्का-सा पुट था। उसके सारे चेहरे पर सुनहरे सिक्कों जैसी बड़ी-बड़ी झाँइयाँ थीं। ये झाँइयाँ इतनी घनीभूत होकर फैली थीं कि इनके लिए बड़ी कठिनाई से ही कोई रिक्त स्थान दिखायी देता था। वे सभी दिशाओं में फैली हुई थीं। यदि कोई जगह इनसे खाली थी, तो वह जरा ऊपर को उठी हुई उसकी छोटी-सी नाक ही थी।

मीत्या अपनी बहन से दो वर्ष छोटा था। उसकी आयु दस से कुछ अधिक रही होगी। वह नाटा और गठे बदन, बड़े माथे और चौड़ी गुद्दी वाला मज़बूत तथा जिद्दी लड़का था।

स्कूल के अध्यापक मुस्कुराते हुए उसे आपस में 'नन्हा किसान' कहते थे।

नास्त्या की भाँति उसका चेहरा भी सुनहरी झाँइयों से भरा हुआ था और बहन की तरह ऊपर को उठी हुई छोटी-सी नाक ही इनसे मुक्त थी।

माँ-बाप की मृत्यु के बाद किसान का घर-बार इन बच्चों की सम्पत्ति बन गया। एक बड़ा-सा घर, जोर्का नाम की गाय, दोच्का नाम की बछिया, देरेज़ा बकरी, कुछ बेनाम भेड़ें और मुर्गियाँ, पेत्या नाम का सुनहरा मुर्गा और ख्रेन नामक सुअर का बच्चा, बस यही कुछ थी इनकी दौलत।

इस सम्पत्ति के साथ इन बेचारे बालकों को जानवरों से सम्बन्धित अनेक चिन्ताएँ भी उत्तराधिकार में मिलीं। किन्तु हमारे बच्चों को महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के कठिन दिनों में इनसे भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। शुरू में कुछ रिश्तेदारों

* 'ब्लूदोवो दलदल'—एक काल्पनिक नाम, जिसका अभिप्राय ऐसी दलदल से है, जहाँ लोग मार्ग भूल जाते हैं।—सं.

और हम पड़ोसियों ने इनकी सहायता की। किन्तु शीघ्र ही इन बच्चों ने, जिनमें बड़ा प्यार था और जो काफ़ी समझदार भी थे, हर काम को स्वयं ही करना सीख लिया और बड़े मज़े से रहने लगे।

ओह, कैसे समझदार बच्चे थे ये! जब कभी सम्भव होता, ये गाँव के सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेते। चरागाहों, सामूहिक फार्मों, पशुशालाओं में, सभाओं और टैंक-विरोधी खन्दकों, आदि में छोटी-छोटी नाकोंवाले ये चेहरे दिखायी देते। ऐसे उत्साही थे ये दोनों।

यद्यपि हम गाँव के नवागन्तुक थे, तथापि गाँव के प्रत्येक घर के जीवन से परिचित थे। और यह कहना सही होगा कि गाँव में एक भी ऐसा घर नहीं था, जिसके सदस्य ऐसे मिल-जुलकर रहते तथा काम करते हों, जैसे हमारे ये स्नेहपात्र।

अपनी दिवंगत माँ की भाँति नास्त्या चरवाहे की श्रृंगी की आवाज़ सुनकर सूरज निकलने तथा पौ फटने के पहले ही उठ बैठती। वह लम्बी-सी सूखी टहनी हाथ में लिये अपने प्यारे जानवरों को हाँकती हुई बाहर ले जाती और जल्दी-जल्दी घर लौट आती। वह फिर से बिस्तर पर न जाकर चूल्हा गर्माती, आलू छीलती, खाना पकाती और सन्ध्या तक घर की देखभाल करती।

मीत्या के पिता ने उसे लकड़ी के कठौते, पीपे और टब बनाने सिखाये थे। उसके पास बढ़ई का रन्दा और पीपे बनाने वालों का एक ऐसा औज़ार भी था जो लम्बाई में उससे दुगुना था। इस औज़ार की सहायता से वह तख्तों को जोड़कर उनके गिर्द लोहे या लकड़ी के घेरे डाल देता था।

चूँकि उनके पास एक गाय थी, इसलिए बच्चों को लकड़ी के बर्तन बनाकर बाज़ार में बेचने की विशेष आवश्यकता नहीं थी। किन्तु सदा ही कोई न कोई ज़रूरतमन्द आ जाता। किसी को हाथ धोने की तिपाई के नीचे रखने को कठौते की ज़रूरत होती, किसी को बरसाती पानी जमा करने को पीपे की, किसी को नमक लगे खीरे या खुमियाँ रखने के टब अथवा फूल लगाने के लिए लकड़ी के दाँतेदार गमले की ज़रूरत रहती थी।

मीत्या ज़रूरत के अनुसार बर्तन बनाकर दे देता और उन्हें बनवाने वाला भी उसे अच्छे पैसे देता। किन्तु पीपे आदि बनाने के काम के अलावा वह मर्दों वाले दूसरे सभी काम भी सँभालता और सामूहिक खेतों के साझे कामों में भी भाग लेता। वह सभी बैठकों में उपस्थित रहता, सामूहिक किसानों की आवश्यकता को समझने की कोशिश करता तथा निस्सन्देह उन्हें कुछ समझ भी जाता था।

यह भी अच्छी बात थी कि नास्त्या अपने भाई से दो साल बड़ी थी, अन्यथा वह अपनी डींग हाँकने की कोशिश करता और उनके बीच मैत्री तथा अद्भुत आपसी समानता कभी कायम न रह पाती। फिर भी कभी-कभी ऐसा होता कि उसे यह याद आ जाता कि कैसे उसके पिता उसकी माँ को अक्ल दिया करते थे, समझाया-बुझाया करते थे और तब पिता की नकल करते हुए उसके दिमाग पर भी अपनी बहन नास्त्या को नसीहतें देने का भूत सवार हो जाता। किन्तु नास्त्या उसकी बहुत कम परवाह करती और खड़ी-खड़ी केवल मुस्कराती रहती... तब 'नन्हा किसान' क्रोध में आ जाता, अकड़ जाता और त्योरी चढ़ाकर कहता :

"यह भी खूब रही!"

"तुम अकड़ किसलिए रहे हो?"

'यह भी खूब रही!" उसका भाई क्रोध में दोहराता। "तुम अकड़ रही हो, नास्त्या, मैं नहीं।"

"नहीं, मैं नहीं, तुम!"

"यह भी खूब रही!"

अपने ज़िद्दी भाई को थोड़ा-सा तंग करने के बाद नास्त्या उसकी गुद्दी को ज़रा थपथपा देती। और ज्यों ही बहन का छोटा-सा हाथ उसकी गुद्दी को छूता, घर का स्वामी पिता के अन्दाज़ में बोलना बन्द कर देता।

"आओ, निराई करें," बहन कहती।

और वे दोनों खीरों अथवा चुकन्दर के खेत को निराने या आलू बोने लगते।

2

खट्टी, किन्तु पौष्टिक क्रेनबेरियाँ गर्मियों में दलदल में पैदा होती है और पतझड़ के अन्त में इन्हें इकट्ठा किया जाता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति यह बात नहीं जानता कि क्रेनबेरियां तभी सबसे अच्छी पर्याप्त जैसा कि हमारे यहाँ कहा जाता है तभी "मीठी" होती हैं, जब वे जाड़े भर बर्फ़ के नीचे दबी रहती हैं।

इस साल के वसन्त में अप्रैल महीने के अन्त तक देवदारों के झुरमुटों के नीचे बर्फ़ जमी हुई थी। किन्तु दलदलों में अपेक्षाकृत कम ठण्ड थी : वहाँ ज़रा भी बर्फ़ बाकी नहीं रही थी। लोगों से यह मालूम होने पर मीत्या और नास्त्या ने क्रेनबेरियों की खोज में जाने का निर्णय किया। नास्त्या ने सुबह होने के पहले ही अपने सभी जानवरों को चारा डाल दिया। मीत्या ने अपने पिता की दुनाली 'तूल्का' बन्दूक कन्धे पर रखी, जंगली पक्षियों को आकर्षित करने के लिए सीटियाँ जेब में डालीं और कम्पास लेना भी नहीं भूला। उसके पिता इस कम्पास के बिना कभी जंगल में नहीं जाते थे। मीत्या ने उनसे अक्सर पूछा था :

"आप सारी उम्र जंगलों में जाते रहे हैं। आप उन्हें अपने हाथ की हथेली की भाँति जानते हैं। फिर आपको इस कम्पास की क्या आवश्यकता रहती है?"

"देखो, बात यह है, मील्या", उसके पिता उत्तर देते, "जंगल में यह चीज़ माँ से भी अधिक सहायक होती है। कई बार आकाश बादलों से ढक जाता है और सूरज का प्रकाश न रहने पर रास्ता मालूम करना कठिन हो जाता है। तब अपनी अटकल से दिशा का अनुमान लगाने में गलती भी हो जाती है, आदमी भटक जाता है और भूख सताने लगती है। किन्तु यदि कम्पास हो, तो बस, सूई पर नज़र डालो और यह मालूम हो जाता है कि घर कहाँ है। सूई को देखते हुए घर पहुँच जाओ और वहाँ पहुँचते ही भोजन मिल जायेगा। यह सूई तुम्हारी सर्वोत्तम संगिनी है—तुम्हारे साथी तुम्हें धोखा दे सकते हैं, किन्तु यह सूई, तुम चाहे इसे कितना ही क्यों न घुमाओ, सदा उत्तर की ओर ही संकेत करती रहती है।"

इस अद्भुत वस्तु को ध्यान से देखने के बाद मील्या ने सूई को एक ही जगह टिका दिया, ताकि वह रास्ते भर व्यर्थ ही न हिलती जाये। उसने पिता की तरह अपने पैरों पर ढंग से पट्टियाँ लपेटीं और घुटनों तक के बूट पहन लिये। तब उसने एक इतनी पुरानी छज्जेदार टोपी, जिसका छज्जा फटकर दो भागों में बँटा हुआ था, सिर पर रख ली। उसका ऊपरी हिस्सा सूरज की तरफ़ ऊपर को उठ गया था और निचला हिस्सा लगभग नाक तक पहुँच रहा था। इसके बाद उसने अपने पिता की जाकेट पहनी या यूँ कहिये वह कालर पहना, जिसके साथ कभी हाथ से काते गये बढ़िया सूत के कपड़े के कुछ टुकड़े ही लगे रहे गये थे। उसने कमरबन्द से इन टुकड़ों को कस दिया। पिता की जाकेट उसके लिए कोट के समान थी और ज़मीन तक पहुँच रही थी। शिकारी के बेटे ने अपने कमरबन्द में एक कुल्हाड़ा खोंस लिया, कम्पासवाला थैला अपने दायें कन्धे पर लटकाया और दुनाली 'तूल्का' बन्दूक को बायें कन्धे पर टिकाकर वह पक्षियों तथा जंगली जानवरों के लिए बहुत भयानक-सा बन गया।

नास्त्या तौलिये में बँधी हुई एक बड़ी टोकरी को कन्धे पर लटकाकर तैयार हो गयी।

"इस तौलिये की ज़रूरत क्या है?" मील्या ने पूछा।

"क्या ज़रूरत है?" नास्त्या ने दोहराया। "क्या तुम्हें याद नहीं कि माँ किस तरह खुमियाँ इकट्ठी करने जाया करती थीं?"

"खुमियाँ! बड़ी समझदार बन रही हो! खुमियाँ तो सदा ही इतनी अधिक होती हैं कि उनके बोझ के कारण रस्सी से कन्धा कट जाता है।"

"और तुम यह कैसे कह सकते हो कि क्रेनबेरियाँ इससे भी अधिक नहीं होंगी?"

मील्या अपना तकिया कलाम "यह भी खूब रही!" दोहराने ही वाला था कि उसे लाम पर जाने से पहले पिता द्वारा क्रेनबेरियों के सम्बन्ध में कही गयी एक बात याद आ गयी।

"तुम्हें याद है पिता जी ने हमें क्रेनबेरियों और जंगल के पैलेस्तीन* के बारे में एक

बार क्या बताया था?" मील्या ने पूछा।

मुझे याद है उन्होंने बताया था कि वह एक ऐसी जगह से परिचित हैं, जहाँ क्रेनबेरियाँ अपने आप हाथ में आ गिरती हैं," नास्त्या ने कहा। "किन्तु मैं किसी पैलेस्तीन के बारे में कुछ नहीं जानती। मुझे याद है, उन्होंने हमें एक भयानक स्थान 'अन्धी दलदल' के बारे में बताया था।"

"हाँ, पैलेस्तीन इससे थोड़ा आगे है," मील्या ने कहा। "पिता जी का कहना था कि 'ऊँचे टीले' तक जाकर उत्तर की ओर चलते जाओ और जब तुम 'गूँजते वन' के टीले को लाँघ लो, तो भी उत्तर की ओर ही आगे चलते जाना और तब तुम क्रेनबेरियों के कारण रक्त की तरह लाल हुए पैलेस्तीन में पहुँच जाओगे। आज तक कोई भी वहाँ नहीं पहुँच पाया है।"

मील्या ने घर से बाहर निकलते हुए यह कहा था। नास्त्या को इसी समय याद हो आया कि पिछली शाम को उबाले गये आलुओं का एक पतीला भरा रखा है। पैलेस्तीन के बारे में सभी कुछ भूलकर वह चुपके से चूल्हे की ओर गयी और आलुओं को टोकरी में डाल लायी।

"हो सकता है हम रास्ता भूल जायें," उसने अपने आपसे कहा। "हमारे पास काफ़ी रोटी और दूध की बोतल है और फिर आलू भी तो काम आ सकते हैं।"

उसका भाई, जो यह समझता था कि उसकी बहन कहीं पास ही में है, उसे अदभुत पैलेस्तीन के सम्बन्ध में बताता रहा। किन्तु वहाँ पहुँचने के लिए 'अन्धी दलदल' को लाँघना पड़ता है और वहाँ अनेक इंसान, गायें और घोड़े मर चुके हैं।

"हाँ, तो यह पैलेस्तीन क्या है?" नास्त्या ने पूछा।

"तो तुम मेरी बात सुन नहीं रही थी?" उसने आश्चर्य से ऊँची आवाज़ में पूछा। और उसने चलते हुए धैर्यपूर्वक वह सभी कुछ दोहरा दिया जो पैलेस्तीन के सम्बन्ध में पिता जी से सुना था। मीठी क्रेनबेरियों वाला यह पैलेस्तीन आज तक अनजाना ही रहा था।

3

'ब्लूदोवो दलदल', जहाँ हम स्वयं भी कई बार मार्ग भूल चुके हैं, लगभग हर बड़ी दलदल की भाँति बेदमजनूँ तथा एलडर, आदि वृक्षोंके झुण्डों से आरम्भ होती है। हाथ में कुल्हाड़ा लिये पहला व्यक्ति इस दलदली मार्ग से गुजरा और उसने अपने पीछे आने वालों के लिए पगडण्डी बना दी थी। दलदल की सतह पर स्थित छोटे-से टीलों को इंसानी

* पैलेस्तीन—ग्रामीणों द्वारा जंगल में किसी मनपसन्द स्थान को दिया गया नाम।—सं.

पैरों ने जी भरकर रौंदा और इस प्रकार यह पगडण्डी बहते पानी से भरी हुई एक खाई बन गयी। बच्चों ने किसी कठिनाई के बिना मुँह अँधेरे ही इस जगह को पार कर लिया। जब झाड़ियाँ दृष्टि मार्ग में बाधक न रहीं, तो सुबह की हल्की रोशनी में दलदल साफ़ दिखायी देने लगी। दलदल समुद्र के समान लगती थी। हकीकत यह है कि यह 'ब्लूदोवो दलदल' किसी जमाने में एक समुद्र की तह थी। जैसे वास्तविक समुद्र में द्वीप तथा रेगिस्तान में नखलिस्तान होते हैं, वैसे ही दलदलों में टीले भी पाये जाते हैं। हमारी 'ब्लूदोवो दलदल' के टीले रेतीले तथा ऊँचे सनोबरों से ढँके हुए हैं। लोग इन्हें 'गूँजता बन' कहकर पुकारते हैं। दलदल में थोड़ी दूर जाकर बच्चे निकटवर्ती टीले पर, जिसे 'ऊँचा टीला' कहा जाता है, जा पहुँचे। इसकी चोटी पर खड़े होकर वे प्रातःकाल के धुँधले प्रकाश में 'गूँजते वन' को देख सकते थे।

'गूँजते वन' में पहुँचने से पहले ही उन्हें रास्ते के साथ-साथ रक्त जैसी लाल-लाल बेरियाँ दिखायी दीं। शुरू में क्रेनबेरियों के इन अभिलाषाओं ने झटपट इन्हें अपने मुँह में डाल लिया। पतझड़ की क्रेनबेरियाँ कभी न चखने वाला व्यक्ति यदि वसन्तकालीन क्रेनबेरियाँ खाये, तो उनकी खटास से उसका तो बुरा हाल हो जाये। किन्तु ये देहाती यतीम बच्चे भलीभाँति जानते थे कि पतझड़ की क्रेनबेरियों का स्वाद कैसा होता है और इसलिए अब वसन्त की क्रेनबेरियों को खाते हुए बार-बार दोहराने लगे :

"ये कितनी मीठी हैं!"

'गूँजते वन' में बच्चों को अप्रैल के महीने में भी बिलबेरी गहरे हरे रंग के पत्तों से ढँका हुआ मनोरम वन-प्रांगण दिखायी दिया। पिछले वर्ष की इस हरियाली में कहीं-कहीं हिम-पुष्प और बैंगनी रंग के छोटे-छोटे सुगन्धित फूल, जिन्हें 'भेड़िये की छाल' का नाम दिया जाता है, झाँकते दिखायी देते थे।

"इनकी खुशबू बड़ी प्यारी होती है। एक तोड़कर देखा तो," मीत्या ने कहा।

नास्त्या ने एक डण्डी तोड़ने का यत्न किया, किन्तु असफल रही।

"इसे 'भेड़िये की छाल' क्यों कहा जाता है?" उसने पूछा।

"पिता जी ने बताया था कि भेड़िये इनसे अपने लिए टोकरियाँ बनाते हैं," उसके भाई ने जवाब दिया।

और वह हँस पड़ा।

"क्या अब भी यहाँ भेड़िये रहते हैं?"

"बेशक रहते हैं! पिता जी का कहना था कि भयानक 'भूरा सामन्त' भेड़िया भी यहीं रहता है।"

"अरे हाँ, वही, जो युद्धपूर्व हमारी भेड़ों को फाड़ डालता था।"

"पिता जी ने बताया था कि वह 'सूखे नाले' के तट पर गिरे हुए पेड़ों के पीछे रहता है।"

"क्या वह हम पर हमला नहीं करेगा?"

"ऐसा करके देख ले," दोहरे छज्जेवाली टोपी पहने शिकारी ने कहा।

बच्चे अभी बातचीत कर ही रहे थे कि इसी बीच अधिकाधिक उजाला होता गया था और 'गूँजता वन' पक्षियों के मधुर कलरव तथा छोटे-छोटे जानवरों की गुर्राहट, चीखों तथा आवाज़ों से गूँज उठा था। ये सभी आवाज़ें टीले से नहीं आ रही थीं, बल्कि दलदल की मूक, नम सतह से आती हुई आवाज़ें टीले से टकराकर गूँज पैदा कर रही थीं। सूखा, चीड़ वृक्षों से ढँका हुआ और गूँजने वाला टीला उन सभी आवाज़ों को प्रतिध्वनित कर रहा था।

बेचारे पक्षी और जानवर केवल एक सुन्दर शब्द कहने के लिए, जो सभी की समझ में आ जाये, कितना अधिक ज़ोर लगा रहे थे! मीत्या और नास्त्या जैसे सीधे-सादे बालक भी उनके इस यत्न को समझ रहे थे। वे सभी केवल कोई एक सुन्दर शब्द कहने को उत्सुक थे।

टहनी पर बैठा हुआ एक पक्षी गाता दिखायी दे रहा था। और ज़ोर लगाने से उसका रोयाँ-रोयाँ काँप रहा था। किन्तु पक्षी हमारी भाँति शब्द नहीं बोल सकते। इसलिए उन्हें अपना मनोभाव समझाने के लिए चहचहाना और चीखना-चिल्लाना पड़ता है।

"तेक-तेक!" एक वृहदाकार जंगली पक्षी चिल्लाया। किन्तु उस घने जंगल में उसकी आवाज़ कठिनाई से ही सुनायी दी।

"क्वाक-क्वाक!" नदी के ऊपर से उड़ते हुए नर-बतख ने चीखकर कहा।

"क़राक-क़राक!" झील की ओर से मादा-बतख की आवाज़ सुनायी दी।

"गू-गू!" भोज वृक्ष से एक सुन्दर बुलफिंच पक्षी की आवाज़ आयी।

चौड़े काँटे की भाँति लम्बी चोंचवाला भूरे रंग का स्नाइप पक्षी जंगली मेढे जैसी मिमियाती आवाज़ से वातावरण को गुँजा रहा था। जंगली मुर्ग कुछ इस तरह से चिल्ला रहा था, "मैं हूँ, मैं, मैं!" कहीं पर काला मुर्ग बड़बड़ा रहा था तथा सफ़ेद तीतर शैतान की तरह हँस रहा था।

हम शिकारियों ने बहुत वर्ष पहले, अपने बचपन में ही उन शब्दों को समझना, उनमें भेद करना और उनका स्वागत करना सीख लिया था, जिनका उच्चारण करने को ये पक्षी व्यर्थ ही यत्न कर रहे थे। और जब हम मुँह अँधेरे ही जंगल में जाते हैं और इन आवाज़ों को सुनते हैं, तो हम उन्हें कहते हैं, "नमस्कार!" मानो वे इस शब्द को समझ सकते हों।

और तब वे भी खुश दिखायी देते हैं जैसे कि इंसानों के मुँह से निकलने वाले ये अदभुत शब्द उनकी समझ में आ गये हों।

प्रत्युत्तर में वे क्वाक-क्वाक और तेक-तेक, आदि आवाज़ों से हमारा अभिवादन करते हुए कहते हैं :

"नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार!"

किन्तु इन आवाज़ों में से एक आवाज़ बिल्कुल अलग और भिन्न सुनायी दे रही थी।

"यह आवाज़ सुनती हो?" मीत्या ने कहा।

"बेशक सुन रही हूँ," नास्त्या ने जवाब दिया। "मैं इसे बहुत देर से सुन रही हूँ। न जाने क्यों, मुझे इस आवाज़ से डर लग रहा है।"

"डरने की कोई बात नहीं। पिता जी ने मुझे इसके बारे में बताया था—ये ख़रगोश हैं जो वसन्त में इस भाँति चीखते हैं।"

"ये ऐसा क्यों करते हैं?"

"पिता जी ने बताया था कि वे 'नमस्कार, खरगोशिनी!' कहने का यत्न करते हैं।'

"और यह गरजती हुई-सी आवाज़ क्या है?"

"पिताजी ने बताया था कि यह बड़ा जंगली बगुला है।"

"यह किसलिए गरजता है?"

"पिता जी ने बताया था कि उसकी भी संगिनी होती है और वह भी अपने ढंग से उसे 'नमस्कार' कहता है।"

सहसा हर वस्तु ताज़ादम और सजीव-सी दिखायी देने लगी मानो तमाम धरती धो दी गयी हो। आकाश चमक उठा और वृक्षों की छाल और कोंपलों से भीनी-भीनी सुगन्ध आने लगी। और उसी दम अन्य सभी आवाज़ों को दबाती हुई एक बिल्कुल भिन्न तथा विजयोन्मत्त आवाज़ सुनायी दी। यह आवाज़ कुछ ऐसी थी मानो बहुत-से लोग एक साथ खुशी से चिल्ला उठे हों :

"विजय! विजय!"

"यह क्या है?" नास्त्या ने पुलकित होते हुए पूछा।

"पिता जी ने बताया था कि सारस इस तरह से सूर्य का अभिवादन करते हैं। इसका अर्थ है कि सूरज शीघ्र ही आकाश में ऊपर चढ़ता दिखायी देगा।"

मीठी क्रेनबेरियों की खोज में जाने वाले ये बालक जब बड़ी दलदल में पहुँच भी चुके थे, तब भी सूरज आकाश में साफ़ तौर पर दिखायी नहीं देने लगा था। इस जगह अभी सूर्य नमस्कार की रस्म अदा होनी शुरू नहीं हुई थी। छोटे और झुके हुए देवदार तथा भोज वृक्षों के ऊपर अभी तक धुंध का कम्बल-सा छाया हुआ था और 'गूँजते वन' की सभी अद्भुत आवाज़ें मानो इसी कम्बल में अटककर रह जाती थीं। केवल मन को उदास करने वाली, किसी के कराहने की आवाज़ साफ़ तौर पर सुनी जा सकती थी।

"यह कैसी आवाज़ है, मीत्या?" नास्त्या ने सिकुड़ते हुए पूछा। "यह दूर से आने वाली भयाकन हूँक क्या है?"

"पिताजी का कहना था," मीत्या ने जवाब दिया, "यह 'सूखे नाले' की ओर से आने वाली भेड़ियों की आवाज़ है। मेरा अनुमान है कि यह 'भूरे सामन्त' भेड़िये की आवाज़ है। पिता जी ने बताया था कि 'सूखे नाले' के तटवर्ती अन्य सभी भेड़िये मारे जा चुके हैं, किन्तु 'भूरे सामन्त' भेड़िये को मारने में किसी को भी सफलता नहीं मिली।"

"इस वक्त वह ऐसे भयानक ढंग से क्यों हूँक रहा है?"

"पिता जी ने बताया था कि वसन्त में भेड़ियों को खाने के लिए कुछ नहीं मिलता और इसलिए वे हूँकते हैं। फिर 'भूरा सामन्त' भेड़िया तो अकेला रह गया है, इसलिए भी हूँकता है।"

दलदल की नमी उनके शरीर में घुसकर उनकी हड्डियों तक को ठण्डा करती जा रही थी। इस नम और रिसती हुई दलदल में उनका आगे बढ़ने को बिल्कुल मन नहीं हो रहा था।

"हम किधर जायेंगे?" नास्त्या ने पूछा।

मीत्या ने कम्पास निकाली और उत्तर दिशा मालूम करके एक धुँधली और अस्पष्ट-सी पगडण्डी की ओर संकेत करते हुए कहा :

"हम इस पगडण्डी पर उत्तर की ओर जायेंगे।"

"नहीं,"नास्त्या ने कहा, "हम उस बड़ी पगडण्डी पर जायेंगे, जहाँ सभी लोग जाते हैं। तुम्हें याद है न, पिता जी ने हमें बताया था कि वह 'अन्धी दलदल' कितनी भयानक जगह है और वहाँ कितने लोग तथा जानवर अपनी जान गँवा चुके हैं। नहीं, नहीं, प्यारे मीत्या, हमें उधर नहीं जाना चाहिए। सभी इस तरफ़ जाते हैं और इसलिए क्रेनबेरियाँ भी इधर ही होंगी।"

"बड़ी आयी कहीं की अक़्लमन्द!" शिकारी मीत्या ने उसे टोकते हुए कहा। "हम उत्तर की ओर उसी तरफ़ जायेंगे, जहाँ पिता जी के मुताबिक पैलेस्तीन है और जहाँ आज तक कोई नहीं पहुँच पाया है।"

नास्त्या ने यह देखकर कि उसका भाई झुँझलाने लगा है सहसा मुस्कराकर उसकी गुद्दी थपथपा दी। मीत्या एकदम शान्त हो गया और इन मित्रों ने कम्पास की सूई द्वारा दिखाये गये मार्ग पर आगे बढ़ना शुरू कर दिया। अब वे साथ-साथ न चलकर आगे-पीछे चल रहे थे।

4

कोई दो सौ वर्ष पूर्व बीजों को उड़ाकर लाने वाली तेज हवा चीड़ और देवदार के

दो बीज एक साथ ही उड़ाकर 'ब्लूदोवो दलदल' में ले आयी। वे दोनों एक ही गड्ढे में एक बड़े समतल पत्थर के समीप एक साथ ही जा गिरे... तभी से देवदार और चीड़ के दोनों वृक्ष वहाँ एक साथ ही बढ़ते रहे। जब वे पौधे ही थे, तभी उनकी जड़ें एक दूसरे से उलझ गयी थीं। उनके तने भी प्रकाश की ओर साथ-साथ बढ़ते हुए एक-दूसरे को पीछे छोड़ने का यत्न करते रहे थे। भिन्न जातियों के इन दो वृक्षों ने जड़ों द्वारा अपने पोषण और शाखाओं से हवा तथा प्रकाश पाने के लिए संघर्ष किया। ज्यों-ज्यों वे बढ़े और उनके तने मोटे हुए, उन्होंने एक दूसरे के जीवित शरीर को अपनी सूखी शाखाओं से चीर डाला और कहीं-कहीं तो ये शाखाएँ आर-पार भी हो गयी थीं। जिस द्वेषपूर्ण हवा ने इन वृक्षों पर इतना दुखद जीवन थोप दिया था, वह कभी-कभी इनकी शाखाओं को झुकाने के लिए इनकी फुनगियों के ऊपर से गुजरा करती थी। और तब 'ब्लूदोवो दलदल' के तमाम क्षेत्र में जीवित प्राणियों से इतनी अधिक मिलती-जुलती इनकी कराहट और चीखें ऐसे फैल जातीं कि दलदल के कांईदार छोटे-से टीले पर सूत के गोले की भाँति गुड़ी-मुड़ी होकर लेटी हुई लोमड़ी भी अपनी तेज नाक को ऊपर उठाकर इधर-उधर देखने लगती। इनकी कराहट और चीखें तमाम जीवित प्राणियों के दिलों को इतना विचलित कर डालती थीं, कि इन्हें सुनकर दलदल में रहने के कारण जंगली हो जाने वाला एक कुत्ता इंसान की अनुपस्थिति के कारण उदास होता हुआ चिल्लाता और भेड़िया मनुष्य के लिए अपनी अमिट घृणा जाहिर करने के लिए गुर्राना शुरू कर देता।

जिस समय सूरज की पहली किरणें दलदल में उगे हुए देवदार और भोज वृक्षों के ऊपर से फैलती हुई 'गूँजते वन' को जगमगा रही थीं और चीड़ के वृक्षों के मजबूत तने प्रकृति के किसी बड़े मन्दिर में जलनेवाली मोमबत्तियों के समान लग रहे थे, उसी समय ये दोनों बालक 'समतल पत्थर' के करीब पहुँचे। आकाश में ऊपर चढ़ते हुए सूर्य का अभिवादन करने वाला पक्षियों का कलरव बहुत मन्द स्वर में इस समतल पत्थर तक पहुँच रहा था। बच्चे यहीं आराम करने के लिए बैठ गये।

प्रकृति में सभी ओर पूर्ण निस्तब्धता थी और बालक, जो अब ठिठुर रहे थे, इतने चुप थे कि काले जंगली मुर्ग कोसाच ने उनकी ओर ध्यान तक नहीं दिया। वह काफ़ी ऊँचाई पर उस जगह बैठा था, जहाँ देवदार और चीड़ को शाखाओं ने आपस में उलझकर दोनों वृक्षों के बीच एक पुल-सा बना दिया था। उसके लिए बहुत ही चौड़े इस पुल पर बैठा हुआ कोसाच चीड़ की अपेक्षा देवदार वृक्ष के अधिक समीप था और चढ़ते सूरज की किरणों में फूलता-सा दिखायी देता था। उसकी कलगी एक लाल फूल की भाँति चमक रही थी और छाती के काले पंखों के बीच वाली नीली धारी अब लगभग हरी लग रही थी। उसकी इन्द्रधनुष जैसी सतरंगी और वीणा की भाँति फैली हुई दुम अत्यधिक सुन्दर दिख रही थी।

दलदल में उगे देवदार के नाटे वृक्षों से ऊपर जाते हुए सूर्य को देखकर उसने ऊँचे

पुल पर अचानक एक छलाँग लगायी और दुम तथा पंखों के नीचे बर्फ़ जैसे श्वेत रोयें दिखाते हुए ऊँची आवाज़ में चिल्लाया :

"कू-की!"

काले जंगली मुर्ग के "कू" का अर्थ सम्भवतः "सूर्य" होगा और "की" को "नमस्कार" का समानार्थ माना जा सकता है।

कोसाच की इस प्रथम पुकार के उत्तर में सारी दलदल इसी ढंग की पुकारों से गूँज उठी। इसके साथ पंखों की ज़ोरदार फड़फड़ाहट भी सुनायी दी और थोड़ी ही देर में हमारे कोसाच से मिलते-जुलते बड़े-बड़े पक्षी भारी संख्या में 'समतल पत्थर' के इर्द-गिर्द आकर बैठ गये।

ठिठुरते बालक ठण्डे पत्थर पर साँस रोककर बैठे हुए सूर्य की किरणों की प्रतीक्षा कर रहे थे, ताकि उन्हें कुछ गर्मी मिल सके। आखिरकार सूर्य की प्रथम किरण पास के नाटे देवदार वृक्षों की फुनगियों को जगमगाती हुई बालकों के गालों को छूने लगी। कोसाच ने अपनी कूद-फाँद और कू-की बन्द करके सूरज को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। अपने ऊँचे सिंहासन पर नीचे की ओर झुककर उसने अपनी लम्बी गर्दन को शाखा के साथ-साथ फैलाया और नदी के पानी जैसी कलकल की आवाज़ पैदा करते हुए एक लम्बी तान छेड़ी। उसके जवाब में दर्जनों अन्य पक्षियों ने, जो उसके जैसे जंगली मुर्ग ही थे, अपनी गर्दनें फैला दीं और इस गान में साथ देने लगे। अब ऐसी आवाज़ पैदा हुई मानो किसी नदी की लहरें अदृश्य कंकड़ों से टकराकर गरज रही हों।

हम शिकारियों ने अन्धकारपूर्ण और ठण्डी सुबह के क्षणों में धड़कते दिलों से यह गान बार-बार सुना है और इसे समझने का प्रयास किया है। जब हमने उनकी बड़बड़ाहट को अपने ढंग से दोहराकर देखा, तो वह कुछ ऐसा बन पड़ा था :

गू-उर-तर
मैं झपटूँगा, तुम पर
गू-उर-तर
मैं झपटूँगा तुम पर, झपटूँगा तुम पर।

इस प्रकार काले जंगली मुर्ग मिलकर गा रहे थे और साथ ही लड़ाई के लिए भी तैयार हो रहे थे। और जिस समय ये पक्षी अपना गाना गा रहे थे, तभी देवदार की घनी फुनगी के बीच एक छोटी-सी घटना घट गयी। वहाँ एक कौवी अपने घोंसले में बैठी थी। वह घोंसले के बिल्कुल पास बैठे और मिलन-गान में योग देते हुए कोसाच की नज़र से बचने का भरसक प्रयत्न कर रही थी। कौवी बेहद चाहती थी कि कोसाच को दूर खदेड़ दे, किन्तु वह प्रातःकालीन ठण्डी हवा में अपने अण्डों को खुला छोड़ देने और इस तरह उनके ठिठुर जाने के ख्याल से डरती थी। घोंसले की रक्षा का भार कौवे पर

था, किन्तु वह अभी तक अपनी प्रभात-फेरी से वापस नहीं आया था। सम्भवतः उसे अपनी उड़ान के दौरान कोई सन्देह पैदा करने वाली वस्तु मिल गयी थी और इसीलिए उसने लौटने में देर कर दी थी। कौवे के लौटने की प्रतीक्षा करती हुई कौवी घोंसले में दुबकी-सी बैठी थी और चूहे की भाँति मूक थी। अचानक उसने अपने साथी को घोंसले की ओर आते देखा और ऊँची आवाज़ में पुकारा :

"काँय!"

स्पष्ट था कि वह उसे मदद के लिए बुला रही थी।

"काँय!" कौवे ने काँय-काँय की आवाज़ में गायक को सम्बोधित किया। इसका मतलब था कि यह मालूम नहीं कि कौन किस पर झपटेगा।

एक नज़र में ही सारी स्थिति को भाँपकर वह शाखाओं के मेल से बने पुल पर जा बैठा, जहाँ उसका घोंसला था और जहाँ बैठा हुआ कोसाच अपना मिलन-गान गा रहा था। कौवे का घोंसला चीड़ वृक्ष के समीप था, जबकि जंगली मुर्ग़ देवदार के तने के पास बैठा था। कौवा आगे घटनेवाली घटना की प्रतीक्षा करने लगा।

कौवे की ओर तनिक भी ध्यान न देकर काले जंगली मुर्ग़ ने एक ऐसी आवाज़ निकाली, जिससे सभी शिकारी भली भाँति परिचित होते हैं :

"कार-कार-काक!"

यह मुर्ग़ों के लड़ाई आरम्भ करने का संकेत था। उनके नुचे हुए पंख हवा में उड़ने लगे। अब पुल पर कौवे ने भी कोसाच की ओर कुछ छोटे-छोटे डग भरे।

मीठी क्रेनबेरियों की खोज में निकले हुए हमारे शिकारी इस समय बुत बने बैठे थे। नाटे दलदली देवदार वृक्षों के ऊपर गर्म सूर्य साफ़ दिखायी देने लगा था। [illegible] समय आकाश में एक छोटा-सा बादल भी नज़र आया। यह ऊपर चढ़ते हुए सूर्य [illegible]डे नीले तीर की भाँति टकराया और इसने सूर्य को मानो दो भागों में विभक्त कर डाला। उसी समय हवा के एक तेज झोंके ने चीड़ वृक्ष को देवदार की ओर झुका दिया और जवाब में देवदार चीख उठा।

पत्थर पर बैठकर आराम करके ताज़ादम होने वाले और सूर्य द्वारा गरमाये हुए बच्चे अपने सफर को जारी रखने के लिए उठ खड़े हुए। किन्तु पत्थर के ठीक पास से ही दलदल की खासी चौड़ी पगडण्डी दो दिशाओं में बँट गयी थी। एक पगडण्डी, जो निश्चित तथा स्पष्ट मालूम देती थी, दाईं ओर को मुड़ गयी थी, जबकि अस्पष्ट पगडण्डी सामने की ओर थी।

कम्पास से दिशाओं की जाँच करने के बाद मीत्या ने अस्पष्ट पगडण्डी की ओर संकेत करते हुए कहा :

"हमें इस पगडण्डी पर जाना चाहिए। यह उत्तर को जाती है।"

"पर यह तो पगडण्डी है ही नहीं," नास्त्या ने जवाब में कहा।

"यह भी खूब रही!" मीत्या ने नाराजगी प्रकट की। "लोग इधर से गये हैं और इसका अर्थ है कि यह पगडण्डी है। हमें उत्तर दिशा में ही जाना है। अब बोलना बन्द करो और आओ आगे चलें।"

अपने से छोटे मीत्या के सामने झुकने में नास्त्या ने अपमान अनुभव किया।

"काँय!" कौवी अपने घोंसले में से चिल्लायी।

कौवे ने पुल पर कुछ डग और बढ़ाये तथा इस बार उसने अपने तथा जंगली मुर्ग़ के बीच का आधा फासला तय कर डाला।

दूसरा गहरा नीला तीर सूरज के मुख को बींधता हुआ निकल गया और आकाश फिर से धुँधला हो गया।

नास्त्या ने हिम्मत करके अपने भाई को समझाने का यत्न किया।

"ज़रा देखो तो मेरी पगडण्डी कितनी साफ़ है," उसने कहा। "सब इसी पगडण्डी पर जाते हैं। क्या हम ही अन्य सभी से ज्यादा समझदार हैं?"

"दूसरे जाते हैं, तो जायें इस पगडण्डी पर," ज़िद्दी 'नन्हे किसान' ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। "हमें तो पिता जी की शिक्षा के अनुसार सूई का अनुकरण करते हुए पैलेस्तीन पहुँचने के लिए उत्तर दिशा में ही जाना चाहिए।"

"पिता जी हमें मनगढन्त किस्से सुनाया करते थे। हमारे साथ मज़ाक किया करते थे," नास्त्या ने कहा। "उत्तर में तो सम्भवतः कोई पैलेस्तीन है ही नहीं। सूई का अनुकरण करना मूर्खता की बात होगी। हम पैलेस्तीन में नहीं, बल्कि सीधे 'अन्धी दलदल' में जा पहुँचेंगे।"

"तो ठीक है," मीत्या ने सहसा कहा। "मैं तुमसे अधिक बहस नहीं करना चाहता। तुम अपनी इसी पगडण्डी पर जाओ, जहाँ सभी औरतें क्रेनबेरियों के लिए जाती हैं और मैं अपनी पगडण्डी पर अकेला ही उत्तर में जाऊँगा।"

और वह क्रेनबेरियाँ इकट्ठी करने के लिए टोकरी तथा खाने-पीने की चीज़ें अपने साथ लेने की चिन्ता किये बिना अपनी पगडण्डी पर ही चल दिया।

नास्त्या को उसे इन चीज़ों की याद दिलानी चाहिए थी, किन्तु वह इतनी अधिक गुस्से में थी कि उसके जाने के बाद उसने केवल थूक भर दिया। उसका चेहरा अंगारों की भाँति दहक रहा था। वह साफ़ नज़र आने वाली पगडण्डी पर क्रेनबेरियों की खोज में चल दी।

"काँय!" कौवी बोली।

तभी कौवे ने अपने और कोसाच के बीच का फासला जल्दी से तय करके पूरी शक्ति से उसे एक चोंच मारी। कोसाच को लगा मानो किसी ने उसकी पीठ पर उबलता पानी डाल दिया हो और वह दूर जा चुके अन्य मुर्ग़ों की ओर तेज़ी से लपका।

किन्तु गुस्से से भुनभुनाते हुए कौवे ने उसे जा दबोचा। उसने मुर्ग़ की दुम से सफ़ेद तथा बहुरंग पंखों का गुच्छा उखाड़कर हवा में बिखरा दिया। वह उसका पीछा करता हुआ अपने घोंसले से काफ़ी दूर तक उड़ता चला गया।

इसी समय धूसर घटा आकाश में काफ़ी नीचे झुक आयी और उसने सूर्य तथा उसकी प्रखर किरणों को ढँक लिया। तेज हवा का एक झोंका आया। आपस में उलझी जड़ों और एक दूसरे की शाखाओं को चीरने वाले वृक्षों की आहों, कराहों ओर चीखों से सारी 'ब्लूदोवो दलदल' गूँज उठी।

5

वृक्ष ऐसे दर्दनाक ढंग से कराह रहे थे कि वन-रक्षक अन्तीपिच की झोंपड़ी के समीप बने आलुओं के गड्ढे से त्राव्का नामक शिकारी कुतिया भी बाहर निकलकर वृक्षों की चीखों के साथ स्वर मिलाते हुए चीखने लगी।

आखिर किस चीज़ ने इतनी सुबह ही कुतिया को अपना सुखद विस्तर छोड़ने और वृक्षों की दर्दीली कराहों में सुर मिलाने के लिए विवश कर दिया था?

वृक्षों की चीखों और आहों-कराहों में कभी-कभी ऐसी आवाज़ें भी सुनायी देतीं मानो जंगल में पथ भूल जाने या अकेला छोड़ दिया जाने वाला बालक बिलख-बिलख रो रहा हो।

इस रुदन को त्राव्का कुतिया बिल्कुल ही सहन नहीं कर पाती थी। वह उसे आधी रात या रात के किसी पहर में भी जगा देता था। सदा एक साथ बढ़ने के लिए अभिशप्त इन वृक्षों के क्रन्दन को यह कुतिया बर्दाश्त ही नहीं कर पाती थी, क्योंकि इससे उसकी अपनी पीड़ा जाग उठती थी।

उस दुर्भाग्य को घटे अब दो वर्ष हो चले थे, जब उसके आराध्य वन-रक्षक, अन्तीपिच नाम के बूढ़े शिकारी की मृत्यु हुई थी।

वर्षों तक हम शिकार के लिए अन्तीपिच के पास जाते रहे थे और अन्तीपिच के बुढ़ापे को देखकर हमें ऐसा लगता मानो वह स्वयं भी यह नहीं जानते होंगे कि उनकी कितनी उम्र है, कि वह इसी तरह अपनी झोंपड़ी में रहते चले जायेंगे और कभी नहीं मरेंगे।

"अन्तीपिच, कितनी उम्र है आपकी?" हम पूछते। "अस्सी वर्ष?"

"इससे अधिक।"

"सौ साल?"

"इससे कम।"

यह सोचते हुए कि वह हमसे मज़ाक कर रहे हैं और वास्तव में अपनी असली उम्र जानते हैं, हम पूछते जाते :

"अन्तीपिच, ये मज़ाक छोड़िये, सच-सच बताइये कि आपकी कितनी उम्र है?"

"सच-सच," बुजुर्ग कहते। "मैं तुम्हें सच-सच बता दूँगा, यदि तुम मुझे पहले यह बता दो कि सच क्या है, कैसा होता है, कहाँ रहता है और कैसे मिल सकता है?"

हमसे जवाब देते न बनता।

"आप हमसे बड़े हैं, अन्तीपिच," हम कहते। "निश्चय ही आप सत्य के बारे में हमसे अधिक जानते हैं।"

"मैं तो जानता हूँ," अन्तीपिच दबी हुई हँसी हँसकर कहते।

"तो हमें बताइये!"

"नहीं, जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, तब तक नहीं बता सकता। खुद सचाई की खोज करो। मेरे मरने से पहले यहाँ आना और तब मैं तुम्हारे कानों में सारी सचाई फुसफुसा दूँगा। आओगे न?"

"हाँ, आयेंगे। पर यदि हम ठीक वक़्त का अन्दाज़ न लगा पाये और आप चल बसे, तो?"

बुजुर्ग ने उसी तरह अपनी आँखें सिकोड़ लीं, जिस तरह वह उस वक़्त करते थे, जब उनका हँसने और मज़ाक करने को मन होता था।

"तुम दूध पीते बच्चे तो हो नहीं, अब तक तुम्हें खुद ही कुछ न कुछ सच्चाई जान लेनी चाहिए थी। और तुम मुझसे सचाई जानना चाहते हो। ख़ैर! अगर मैं मरने लगूँगा और तुम लोग यहाँ, मेरे नज़दीक नहीं होंगे, तो मैं त्राव्का के कानों में सचाई फुसफुसा जाऊँगा। त्राव्का!" उन्होंने पुकारा।

पीठ पर काली धारीवाली बादामी रंग की बड़ी सारी कुतिया झोंपड़ी में दाखिल हुई। इसकी आँखों के नीचे काले रंग के अर्द्धचन्द्र बने हुए थे, जिनके कारण इसकी आँखें वास्तव से कहीं अधिक बड़ी लग रही थीं। और ये आँखें मानो पूछ रही थीं : "मालिक! मुझे किसलिए बुलाया है?"

अन्तीपिच ने एक ख़ास अन्दाज़ में उसकी ओर देखा। कुतिया फौरन समझ गयी कि किसी काम से नहीं, बल्कि प्यार करने, हँसने-खेलने और मज़ाक करने के लिए ही उसे यहाँ बुलाया गया है। त्राव्का ज़ोर-ज़ोर से दुम हिलाती तथा अपना तन झुकाती हुई अन्तीपिच की ओर बढ़ने लगी। और जब वह रेंगती हुई बूढ़े के घुटनों के पास जा पहुँची, तो पीठ के बल लेट गयी ओर उसका भूरे रंग का पेट, जिस पर काले रंग के स्तनों के छः जोड़े थे, नज़र आने लगा। अन्तीपिच ने उसे थपथपाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया ही था कि वह अचानक उठ खड़ी हुई, उसने अपने सामने के पंजे मालिक के कन्धों पर रख दिये और उसकी नाक, गालों, यहाँ तक कि होंठों को भी चाटने

लगी।

"बस, बस, काफ़ी हो गया," अन्तीपिच ने कुतिया को शान्त करते और आस्तीन से अपने चेहरे को पोंछते हुए कहा।

फिर उन्होंने उसका सिर थपथपाया और कहा :

"बस, काफ़ी है, अब जाओ।"

त्राव्का मुड़ी और बाहर चली गयी।

"हाँ, तो मेरे दोस्तो," अन्तीपिच ने कहा। "जरा सोचो, त्राव्का एक शिकारी कुतिया ही तो है, वह मेरी हर बात समझती है और तुम बुद्धू लोग पूछते जा रहे हो कि सचाई कहाँ है। ख़ैर! ठीक वक्त पर यहाँ पहुँचने की कोशिश करना। अगर चूक गये, तो मैं त्राव्का के कानों में सत्य फुसफुसा जाऊँगा।"

तो अन्तीपिच चल बसे। और उसके शीघ्र ही बाद महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध छिड़ गया। उनके स्थान पर किसी अन्य वन-रक्षक की नियुक्ति न हुई और उनकी झोंपड़ी खाली पड़ी रही। झोंपड़ी अन्तीपिच से भी अधिक पुरानी थी और थूनियों पर टिकी हुई थी। मालिक के न रहने पर हवा ने एक दिन झोपड़ी से खिलवाड किया और वह उसी भाँति खण्ड-खण्ड होकर गिर गयी, जैसे बच्चे की फूँक से ताश का घर गिर जाता है। एक साल भी नहीं बीता कि लट्ठों के बीच से ऊँची-ऊँची घास निकल आयी और वन-आँगन में लाल फूलों से ढँका हुआ झोपड़ी का एक छोटा-सा टीला ही बाकी रह गया। त्राव्का में जंगली जानवरों की भाँति आलू रखने के गड्ढे रहने लगी।

किन्तु उसके लिए जंगली जानवरों जैसे जीवन का अभ्यस्त होना आसान न था। वह अपने लिए नहीं, बल्कि अपने प्यारे और महान स्वामी अन्तीपिच के लिए शिकार करती थी। बहुत बार ऐसे हुआ था कि वह कोई ख़रगोश पकड़ लेती। वह उसे अपने अगले पंजों के नीचे दबाकर बैठ जाती और अन्तीपिच के आने की प्रतीक्षा करती रहती। अत्यधिक भूखी होने पर भी वह ख़रगोश को न खाती। और यदि किसी कारणवश अन्तीपिच न आते, तो वह ख़रगोश को अपने मुँह में दबा लेती और सिर ऊँचा किये हुए, ताकि वह इधर-उधर हिले-डुले नहीं, घर की ओर चल देती। इस प्रकार वह अपने लिए नहीं अन्तीपिच के लिए काम करती थी। दूसरी ओर उसका स्वामी उसे प्यार करता, खिलाता-पिलाता तथा भेड़ियों से उसकी रक्षा करता था। अब जब अन्तीपिच नहीं रहे थे, तो उसे सभी दरिन्दों की भाँति जंगल में अपने लिए ही जीना था। अब भी कई बार ख़रगोश का पीछा करती हुई वह भूल जाती थी कि उसे अन्तीपिच के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए ही उसे पकड़ना और पकड़कर खा जाना है। बहुत बार त्राव्का को वर्तमान की बिल्कुल सुध न रहती और जब वह ख़रगोश को पकड़ लेती, तो उसे उठाकर अन्तीपिच के लिए ले जाती। और वहाँ वृक्षों की कराहें सुनकर उस टीले पर जा बैठती, जो कभी झोपड़ी था, और रोना शुरू कर देती...

'भूरा सामन्त' भेड़िया बहुत समय से इसी क्रन्दन को ध्यानपूर्वक सुने जा रहा था।

6

अन्तीपिच की झोपड़ी 'सूखे नाले' के समीप थी। कुछ वर्ष पहले स्थानीय किसानों ने हम शिकारियों की एक टोली को यहाँ बुलाया था। स्थानीय शिकारियों ने यह खबर दी थी कि 'सूखे नाले' के आसपास भेड़ियों के बच्चों का भारी जमघट है। हम किसानों की सहायता के लिए गये और हिंसक जन्तुओं के विरुद्ध संघर्ष करने के नियमों के अनुसार हमने अपना काम शुरू कर दिया।

रात के वक़्त हम 'ब्लूदोवो दलदल' में पहुँचे हम भेड़ियों की तरह गुर्राये और उत्तर में हमें 'सूखे नाले' के आसपास रहने वाले सभी भेड़ियों की आवाज़ें सुनायी दीं। इस प्रकार हमने यह ठीक मालूम कर लिया कि वे कहाँ रहते हैं और उनकी संख्या कितनी है। वे 'सूखे नाले' के टेढ़े मेढ़े और दुर्गम पाट में रहते थे। बहुत समय पहले वहाँ नदी और वृक्षों के बीच एक बड़ा संघर्ष हुआ था। नदी अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ी, जबकि वृक्ष किनारों की रक्षा के लिए डटे रहे। नदी जीत गयी और वृक्ष उखड़कर नीचे जा गिरे। किन्तु उसके बाद नदी का पानी दलदल में जा मिला और उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। नदी के पाट में वृक्षों और कूड़े-करकट की तह पर तह जमती चली गई। भूमि पर पड़े हुए वृक्षों के तनों के बीच से घास ने अपना मार्ग बना लिया था और सिरपेंचे की बेल बहुत-से नौउम्र ऐस्प वृक्षों के तनों के सभी ओर एक रस्सी की भाँति लिपट गयी थी। इस तरह एक मजबूत बाँध या हम शिकारियों की भाषा में, भेड़ियों का अड्डा बन गया था।

भेड़ियों के अड्डे का पता लगाने के बाद हमने स्कीज पहनकर तीन किलोमीटर के घेरे में लाल रंग की बदबूदार झण्डियाँ लटका दीं। भेड़िये लाल रंग से डरते हैं और लाल रंग से ताज़ा रंगी हुई गन्धयुक्त झण्डियाँ उनके मन में भय उत्पन्न करती हैं। और अगर हवा तेज हो तथा झण्डियाँ जहाँ-तहाँ फड़फड़ाने लगें तो भेड़ियों के दिल बैठने लगते हैं।

निशानेबाजों की संख्या के अनुसार हमने झण्डियों के इस घेरे में 'रास्ते' बना लिये। हर 'रास्ते' में फर वृक्ष की घनी शाखाओं के पीछे एक शिकारी छिपकर खड़ा हो गया।

रह-रहकर शोर मचाते और अपनी लाठियों को बजाते हुए हंकुओं ने भेड़ियों को नींद से जगाया। शुरू में वे दबे पाँव हंकुओं की उल्टी दिशा में बढ़े। मादा-भेड़िया आगे-आगे थी और बच्चे पीछे-पीछे। उनके पीछे, कुछ फासले पर भारी सिरवाला बदनाम और वह दुष्ट बूढ़ा भेड़िया अकेला ही आ रहा था जिसे किसानों ने 'भूरे सामन्त' भेड़िये का नाम दे रखा था।

भेड़िये बहुत सावधानी से चल रहे थे। हंकुए तेजी से पीछा करते जा रहे थे। मादा-भेड़िया दौड़ने लगी। तभी अचानक...

उसे अपने सामने दिखायी दीं लाल झण्डियाँ!

वह दूसरी ओर मुड़ी, किन्तु वहाँ भी वही लाल झण्डियाँ थीं!

हंकुए अधिकाधिक समीप आते जा रहे थे। मादा-भेड़िया अपनी स्वाभाविक बुद्धि खोकर इधर-उधर दौड़ने लगी। अन्त में उसने एक 'रास्ता' खोज निकाला, किन्तु यहाँ उसके सिर में एक गोली लगी, जो केवल दस कदम के फासले से चलायी गयी थी।

इस तरह भेड़ियों के इस झुण्ड का सफाया हुआ, किन्तु 'भूरा सामन्त' भेड़िया ऐसी विकट परिस्थितियों से पहले भी निपट चुका था। बन्दूक की आवाज़ सुनकर वह झंडियों के ऊपर से सामने की ओर कूद गया। जब वह ऐसा कर रहा था, तो उस पर दो गोलियाँ चलायी गयीं, जिनमें से एक गोली ने उसके बायें कान तथा दूसरी ने आधी दुम का सफाया कर डाला।

यद्यपि उस झुण्ड का अन्त किया जा चुका था, तथापि 'भूरे सामन्त' भेड़िये ने केवल एक गर्मी में ही उतनी गौएँ और भेड़ें मार डालीं, जितनी सारी झुण्ड मिलकर मारता था। वह अक्सर किसी जूनिपर झाड़ी के पीछे छिपकर उस क्षण की प्रतीक्षा करता रहता, जब चरवाहे रेवड़ को अकेला छोड़ देते या सो जाते। ठीक अवसर देखकर वह उन पर झपटता, भेड़ों को मारता और गौओं को घायल कर डालता। तब एक भेड़ को अपनी पीठ पर लादकर वह बाड़ को लाँघ जाता और 'सूखे नाले' में अपनी दुर्गम माँद में जा छिपता। सर्दी के मौसम में, जब ढोर-ढंकर चरने के लिए बाहर न निकलते तब वह पशुओं के किसी बाड़े में बहुत कम ही घुस पाता और गाँवों के कुत्तों के मांस पर ही गुजारा करता। अन्त में वह इस हद तक गुस्ताख हो गया कि उसने एक बार एक कुत्ते को, जो अपने स्वामी की स्लेज के पीछे दौड़ रहा था और भेड़िये को देखकर अपनी रक्षा के लिए स्वामी के पास स्लेज में जा छिपा था, मालिक के हाथ से ही छीन लिया।

'भूरा सामन्त' भेड़िया देहात के लोगों के लिए अत्यधिक भयावह बन गया था और किसानों ने एक बार फिर हमारे शिकारी-दल से सहायता की प्रार्थना की। पाँच बार हमने उसे झण्डियों के व्यूह में घेरने की कोशिश की और पाँचों बार वह हमारी झण्डियों के घेरे को फाँदकर निकल गया। और कड़ाके की ठण्ड और भूख से पीड़ित और वसन्त के आरम्भ होने के बाद भूरा भेड़िया अपनी माँद में बड़ी बेसब्री से वास्तविक वसन्त के आगमन और गाँव के चरवाहे की श्रृंगी की आवाज़ सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस सुबह, जब दोनों बालक आपस में झगड़कर अलग-अलग पगडण्डियों पर चल दिये थे, भूरा भेड़िया भूख के कारण बहुत खीझा हुआ अपनी माँद में पड़ा था। जब हवा के कारण 'समतल पत्थर' के समीपवर्ती वृक्ष, प्रातःकालीन माधुर्य को नष्ट करते हुए

क्रन्दन करने लगे, तो वह इसे सहन न कर सका और अपनी माँद से बाहर आया। उसने अपनी नाक ऊपर उठायी, पेट को सिकोड़ा, जो भूख के कारण पहले ही बहुत सिकुड़ा हुआ था, अपने एकमात्र कान को ऊपर उठाया और कटी हुई दुम को सीधा करके ज़ोर से चीख उठा।

कितनी दर्दभरी चीख थी यह! ओह, राहगीर! अगर तुम रास्ते चलते हुए कहीं इसे सुनो, तो द्रवित मत हो जाना, अपनी भावनाओं को वश में रखना। सुना तुमने, यह मनुष्य के सर्वोत्तम मित्र कुत्ते की दर्दीली आवाज़ नहीं, बल्कि उसके सबसे भयानक शत्रु भेड़िये की चीख है, जो स्वयं अपने बुरे स्वभाव के कारण मौत का शिकार होता है। अपनी हमदर्दी को अपने पास ही रखना, राहगीर! इसे उन्हें मत देना, जो भेड़िये की भाँति अपनी दुर्दशा देखकर चिल्लाते हैं। इसे उनके लिए सहेजना, जो स्वामी को गँवा देने वाले कुत्ते की भाँति यह न जानते हुए रोते हैं कि अब अपने को किसकी सेवा में लगायें।

7

'सूखा नाला' 'ब्लूदोवो दलदल' को एक विस्तृत अर्द्धचक्र के रूप में घेरे हुए है। इसके एक तट पर भेड़िया रो रहा था और दूसरे पर कुत्ता। वृक्षों से टकराती हुई हवा उनके क्रन्दन को इधर-उधर फैला रही थी। वह इस बात की ओर जरा भी ध्यान नहीं देती थी कि वह किसको लाभ पहुँचा रही है। हवा इस बात की परवाह नहीं करती कि चीखें और क्रन्दन कहाँ से आ रहे हैं—वृक्षों से, मनुष्य के सर्वोत्तम मित्र कुत्ते की ओर से अथवा मनुष्य के सबसे भयानक शत्रु भेड़िये की तरफ़ से। उसका काम तो केवल आवाज़ को वातावरण में फैलाना है। उसने बड़ी लापरवाही से स्वामी द्वारा अकेली छोड़ी गयी कुतिया की दर्दभरी आवाज़ भेड़िये के कानों तक पहुँचा दी। भूरा भेड़िया वृक्षों की कराहों तथा कुत्ते के क्रन्दन का अन्तर पहचानकर अपनी माँद से दबे पाँव चल पड़ा। उसने अपने अकेले कान को ऊपर उठाया, अपनी कटी हुई पूँछ को अकड़ाया और एक टीले पर चढ़ गया। इस अधिक अनुकूल स्थान से उसने यह मालूम कर लिया कि रोने की आवाज़ अन्तीपिच की झोपड़ी के पास से आ रही है और वह लम्बी-लम्बी छलाँगें मारता हुआ टीले से सीधा उसी दिशा में बढ़ने लगा।

इसे त्राव्का की खुशकिस्मती ही समझिये कि उसे भूख बेहद सता रही थी और इसलिए अपने उस दर्दनाक रुदन को जारी नहीं रख सकती थी, जिसके द्वारा या तो वह अपने भाग्य को कोस रही थी या अपने किसी नये स्वामी को अपने पास बुला रही थी। शायद इस कुतिया की समझ में अन्तीपिच मरे नहीं थे, बल्कि केवल इससे मुँह मोड़कर

कहीं चले गये थे। शायद वह यह समझती थी कि हर इंसान अन्तीपिच ही है, सिर्फ उनके बहुत-से अलग-अलग चेहरे हैं। और अगर उन्होंने अपना एक मुँह मोड़ लिया था, तो शायद वही अन्तीपिच किसी भिन्न रूप में शीघ्र ही उसे दुबारा पास बुला लेंगे और तब वह इस नये अन्तीपिच की भी वैसी ही वफादारी से खिदमत करेगी जैसी उसने पहले अन्तीपिच की थी...

शायद ऐसा ही था : त्राव्का अपनी पूरी शक्ति से अन्तीपिच को बुला रही थी।

और भेड़िया मनुष्य के लिए, जिससे उसे बड़ी घृणा थी, कुतिया द्वारा की गयी इस प्रार्थना को सुनकर उसी दिशा में लम्बे डग भरने लगा, जिधर से यह आवाज़ आ रही थी। यदि कुतिया केवल पाँच मिनट तक अपने इस विलाप को और जारी रखती, तो भूरे भेड़िये ने उसे दबोच लिया होता। किन्तु अन्तीपिच के लिए अपनी व्यथा को व्यक्त करने के बाद उसे ज़ोर की भूख महसूस हुई। उसने चिल्लाना बन्द कर दिया तथा ख़रगोश की टोह में चल दी।

यह साल का वह समय था, जब रात को घूमनेवाला जानवर, यानी ख़रगोश, दिन निकलते ही लेट नहीं जाता और डर के मारे दिन भर जागते हुए ऐसे लेटे-लेटे ही रात की प्रतीक्षा नहीं करता। वसन्त के दिनों में, दिन के समय भी ख़रगोश निडर होकर रास्तों पर और खेतों में घूमता है। चुनांचे एक बूढ़ा ख़रगोश उस स्थान पर आया, जहाँ बालक आपस में झगड़कर अलग हो गये थे और वह भी उन बालकों की भाँति उस 'समतल पत्थर' पर बैठकर आराम करने और इधर-उधर से आने वाली आवाज़ों को ध्यान से सुनने लगा। अचानक हवा के एक तेज झोंके और वृक्षों के क्रन्दन से वह डर गया, 'समतल पत्थर' से कूदा और अपनी पिछली टाँगों को आगे की ओर बढ़ाकर फुदकता हुआ उस 'अन्धी दलदल' की ओर भाग गया जिसे मनुष्य के लिए बेहद भयानक समझा जाता था। उस समय तक वह अपने रोयें पूरी तरह नहीं गिरा पाया था, इसलिए ज़मीन पर न केवल अपने पंजों के चिह्न, बल्कि जाड़ों के कुछ रोयें भी झाड़ियों और पिछले वर्ष की ऊँची घास में छोड़ गया।

ख़रगोश को 'समतल पत्थर' से गये हुए काफ़ी समय हो चुका था, फिर भी त्राव्का को शीघ्र ही उसकी गन्ध मिल गयी। किन्तु दो इंसानों तथा आलुओं और रोटियों से भरी टोकरी की गन्ध ने उसे फौरन ख़रगोश का पीछा नहीं करने दिया।

और अब त्राव्का के सम्मुख यह जटिल समस्या थी कि क्या वह ख़रगोश की गन्ध के पीछे 'अन्धी दलदल' की ओर जाये, जहाँ एक छोटे इंसान के पाँवों के चिह्न भी थे अथवा दाईं ओर को जाने वाले व्यक्ति के पद-चिह्नों का अनुकरण करती हुई 'अन्धी दलदल' का चक्कर लगाये?

यदि त्राव्का यह निश्चित कर पाती कि उन दोनों बालकों में से किसके पास रोटी है, तो इस पहेली का अपने आप ही हल निकल आया होता। काश उसे रोटी का एक

टुकड़ा खाने को मिल जाता! तब वह अपने लिए नहीं, रोटी देने वाले को भेंट करने के लिए ख़रगोश का पीछा करती।

वह किधर जाये, किस दिशा में बढ़े?..

इंसान के सम्मुख जब कोई गम्भीर समस्या आती है, तो वह सोचने लगता है और शिकारी कुत्ते की इसी अवस्था को शिकारी "दुविधा में पड़ना" कहते हैं।

इस प्रकार त्राव्का ने भी वही किया, जो ऐसी अवस्था में अन्य किसी भी शिकारी कुत्ते ने किया होता। अपनी नाक को हवा में ऊपर उठाकर उसने चक्कर लगाना शुरू किया। वह अपनी नाक को नीचे-ऊपर, दायें-बायें हिलाती जा रही थी। इस समय उसकी आँखों में बुद्धिमत्तापूर्ण चिन्तन की झलक देखी जा सकती थी।

जिस दिशा में नास्त्या गयी थी, उधर से आने वाले हवा के एक तेज़ झोंके से त्राव्का का चक्कर लगाने का यह क्रम सहसा ही बन्द हो गया। वह एक मिनट के लिए रुकी और फिर ख़रगोश की भाँति अपनी पिछली टाँगों के बल ऊपर उठी...

कुछ ऐसी ही स्थिति एक बार पहले भी, अन्तीपिच के जीवनकाल में भी पैदा हो चुकी थी। तब वन-रक्षक लकड़ी काटने का कठिन काम कर रहा था। निर्विघ्नता से काम करने के लिए अन्तीपिच ने त्राव्का को झोंपड़ी के समीप ही बाँध दिया था। वन रक्षक मुँह अँधेरे ही चला गया था। किन्तु त्राव्का दोपहर को ही यह जान पायी कि जंजीर का दूसरा सिरा एक हुक द्वारा मोटी रस्सी से बँधा हुआ है। ज्यों ही यह बात उसकी समझ में आयी, त्यों ही वह किसी तरह से झोपड़ी के पास की ऊँची भूमि तक, जहाँ से रस्सी शुरू होती थी, पहुँच गयी। तब वह अपनी पिछली टाँगों पर खड़ी होकर अगले पंजों से रस्सी को अपनी ओर खींचने लगी और दिन ढलते तक रस्सी को काटने में सफल हो गयी। इसके बाद गले में जंजीर लटकाये हुए वह अन्तीपिच की खोज में निकल पड़ी। अन्तीपिच को गये बारह घंटे से अधिक समय बीत चुका था। गन्ध समाप्त हो चुकी थी और पदचिह्न हल्की फुहार द्वारा, जो वर्षा की अपेक्षा ओस-सी लग रही थी, मिटा दिये गये थे। किन्तु जंगल बिल्कुल शान्त था और वहाँ एक बार भी हवा का झोंका नहीं आया था। इसलिए अन्तीपिच की पाइप के धुएँ की तेज गन्ध उस समय तक भी वातावरण में फैली हुई थी। त्राव्का यह बात शीघ्र ही समझ गयी कि पद-चिह्नों की सहायता से अन्तीपिच का पता नहीं लगा सकती और इसलिए अपनी नाक को हवा में घुमाते हुए उसने सहसा तम्बाकू की गन्ध अनुभव की। और फिर धीरे-धीरे, कभी तो तम्बाकू की गन्ध को पाते और कभी उसे गँवाते हुए वह अन्त में अपने स्वामी के पास पहुँच गयी।

अब, जब तेज हवा का झोंका इस सन्देहपूर्ण गन्ध को उसके समीप लाया, तो इसे अपने इसी अनुभव की याद हो आयी। वह क्षण भर के लिए जड़वत प्रतीक्षा करती रही। जब दूसरा झोंका आया, तो वह अपनी पिछली टाँगों पर वैसे ही खड़ी हो गयी

जैसे कि उसने उक्त घटना के समय किया था और उसे इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि रोटी और आलू की गन्ध हवा के साथ उसी दिशा से आ रही थी, जिधर एक बालक गया था।

हवा के साथ आयी गन्ध और टोकरी द्वारा छोड़ी गयी गन्ध की तुलना करने के लिए त्राव्का 'समतल पत्थर' के पास वापस चली गयी। तब उसने दूसरे बालक और खरगोश द्वारा छोड़े गये चिह्नों को एक बार फिर सूँघा। उसने अपने मन में शायद कुछ इस प्रकार तर्क-वितर्क किया होगा :

"खरगोश तो सीधा अपने दिन के बिल में गया होगा। वह कहीं समीप ही, 'अन्धी दलदल' के आसपास होगा। दिन भर वहीं रहेगा और कहीं नहीं जायेगा। किन्तु आलू और रोटियोंवाले इंसान के गायब हो जाने की बड़ी सम्भावना है। इसेक अलावा इन दो चीज़ों की तुलना ही क्या हो सकती है–एक तरफ़ तो खून-पसीना एक करके ख़रगोश को पकड़ना और उसे चीरकर अकेले ही खाना और दूसरी ओर मनुष्य से उसका प्यार तथा रोटी पाना। यह भी तो सम्भव है कि फिर से कोई अन्तीपिच मिल जाये।"

उन चिह्नों की ओर, जो सीधे 'अन्धी दलदल' की दिशा में जाते थे, उसने एक बार फिर देखा और उस पगडण्डी की ओर घूम गयी जो दलदल के गिर्द दाईं ओर को जाती थी। वह एक बार फिर अपनी पिछली टाँगों पर खड़ी हुई, उसने पूँछ को तनिक हिलाया और धीरे-धीरे उस पगडण्डी पर दौड़ने लगी।

8

कम्पास की सूई का अनुकरण करते हुए मीत्या जिस 'अन्धी दलदल' की तरफ़ गया था, वह बहुत खतरनाक जगह थी। गौओं और भेड़ों की बात तो एक तरफ़, वहाँ अनेक इंसानों की भी जानें जा चुकी थीं। 'ब्लूदोवो दलदल' की ओर जाने वाले हर व्यक्ति को 'अन्धी दलदल' के बारे में अवश्य ही अच्छी तरह से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

पीट के विस्तृत भण्डारों के कारण 'ब्लूदोवो दलदल' को सूरज का खजाना कहा जा सकता है। हाँ, इसे इसी नाम से पुकारना उचित है और तपता हुआ सूर्य इस दलदल में पैदा होने वाली घास की हर पत्ती, हर फूल तथा बेरी का जन्मदाता है। इनमें से प्रत्येक को सूरज अपनी गर्मी देता है और इनमें से हरेक मुरझाने तथा नष्ट होने के बाद खाद के रूप में घास की उन नयी पत्तियों, फूलों, झाड़ियों और उन बेरियों को अपनी गर्मी प्रदान करता है जो उनके स्थान पर पैदा होती है। किन्तु दलदल का पानी पौधों की पैतृक सम्पत्ति के शिशु-पौधों तक पूरी तरह पहुँचने में बाधक होता है। हज़ारों वर्षों तक यह सम्पत्ति पानी की सतह के नीचे जमा होती रहती है और इस प्रकार दलदल

सूरज का ख़ज़ाना बन जाती है। तब हरी घास की नष्ट जड़ों तथा पत्तों का यह सारा कोष पीट के रूप में मनुष्य को उत्तराधिकार में प्राप्त होता है।

'ब्लूदोवो दलदल' में पीट के विस्तृत भण्डार हैं। किन्तु पीट की तहें सभी जगहों पर एक जैसी मोटी नहीं है। 'समतल पत्थर' के आसपास, जहां बालक कुछ देर बैठे थे, मुरझाये हुए पौधे हज़ारों वर्षों से एक दूसरे पर अपनी तहें जमाते चले गये थे। घास और पौधों की जड़ों की पुरानी से पुरानी तहें यहाँ थीं, किन्तु आगे, 'अन्धी दलदल' की ओर नयी और पतली तहें थीं।

कम्पास की सूई और पगडण्डी का अनुकरण करता हुआ मीत्या ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसके पाँव के नीचे की धरती, जो अभी तक नर्म थी, धीरे-धीरे फिसलनी होने लगीं वह ठोस दिखायी देने वाली भूमि पर अपना पैर रखता, किन्तु पाँव नीचे की ओर धँस जाता। तब वह घबराकर अपने से प्रश्न करता कि कहीं उसका पाँव गड्ढे में तो नहीं पड़ गया? मार्ग में कुछ छोटे-छोटे टीले तो ऐसे हिलते-डुलते थे कि अपना पाँव बढ़ाने के पूर्व उसे कई बार सोचना पड़ता था। फिर कभी-कभी ऐसा भी होता कि उसके पाँव रखते ही धीरे-धीरे ऐसी गुड़गुड़ाहट होती जैसी कि कई बार पेट में होती है और यह आवाज़ दलदल के नीचे कहीं गायब हो जाती।

अब उसके पाँव के नीचे की धरती एक झूले के समान थी जो कीचड़ से भरी गहरी खोह पर झूलता-सा लगता था। इस झूलती हुई भूमि पर, आपस में उलझी जड़ों और पौधों के तनों का सहारा लेकर काई से ढँके हुए छोटे-छोटे और पतले-पतले देवदार उगे हुए थे। तेजाबी और दलदली भूमि होने के कारण वे अधिक ऊँचे नहीं बढ़ पाये थे और तब भी ये छोटे-छोटे वृक्ष कोई एक सौ साल या इससे भी अधिक उम्र के थे...टेढ़े-मेढ़े देवदार जंगल में उगने वाले वृक्षों की भाँति लम्बे, सुडौल और एक दूसरे के साथ-साथ स्तम्भों अथवा मोमबत्तियों की भाँति करीने से नहीं खड़े थे। जो वृक्ष जितना अधिक पुराना था, वह उतना ही अधिक भद्दा था। कहीं तो किसी वृक्ष की पातहीन शाखा इस ढंग से खड़ी थी मानो किसी को पकड़ने लगी हो, कहीं एक अन्य वृक्ष अपने हाथ में एक छड़ी-सी पकड़े दिख रहा था मानो समीप आने पर तुम्हें मारेगा, कहीं कोई देवेदार किसी कारणवश नीचे की ओर झुका हुआ था और कहीं वह मानो कुछ बुन-सा रहा था। उनमें से कोई भी तो वृक्ष जैसा नहीं लग रहा था।

मीत्या के पाँव के नीचे घास-पात की तहें पतली होती जा रही थी। किन्तु पौधों की उलझली हुई जड़ें अवश्य ही इंसानी बोझ को सहन करने के लिए काफ़ी दृढ़ होंगी, क्योंकि मीत्या हर कदम पर धँसता हुआ और आसपास की वस्तुओं को दूर तक हिलाता हुआ भी आगे ही आगे चलता जा रहा था। मीत्या केवल उसी व्यक्ति पर विश्वास कर सकता था जो उससे पहले यहाँ से गया था और यह पगडण्डी भी बना

गया था।

बड़ी बन्दूक और दोहरे छज्जे की टोपी वाले इस छोटे-से लड़के के निकट से गुजरने पर देवदार के बूढ़े वृक्ष बहुत व्यग्र दिखायी देते थे। उनमें से कोई तो कभी ऐसे तन जाता मानो इस उद्दण्ड मुसाफिर पर चोट करना चाहता हो और साथ ही आगे की ओर झुककर बाकी सभी बूढ़े वृक्षों को अपनी ओट में कर लेना चाहता हो। फिर वह पीछे हट जाता और तब दूसरा वृक्ष अपना हड्डी जैसा पतला हाथ मार्ग की ओर आगे बढ़ा देता। ऐसा लगता था मानो एक कदम और आगे जाने पर सहसा वन-प्रांगण सामने आ जायेगा, जिसके मध्य में रूसी लोक-कथाओं की चुड़ैल बाबा-यागा की झोपड़ी होगी और उसके इर्दगिर्द बाड़ पर इंसानी खोपड़ियाँ टँगी होंगी।

'गूँजते वन' में अपने घोंसले की रक्षा के लिए दलदल में सभी ओर उड़ते हुए काले कौवे ने दोहरे छज्जे की टोपीवाले इस छोटे-से शिकारी को देखा। अन्य पक्षियों की भाँति वसन्त में कौवा भी एक खास अन्दाज़ में आवाज़ निकालता है। भारी अनुनासिक स्वर से "काँय-काँय!" करते हुए कौवे की इस आवाज की इंसान आसानी से कुछ नकल कर सकता है। कौवे की सामान्य आवाज़ में कुछ अन्य अस्पष्ट और हमारे कानों तक पहुँचने में असमर्थ ध्वनि-भेद मिले रहते हैं और इस कारण हम यह नहीं समझ पाते कि कौवा क्या कहता है और हम बहरे तथा गूँगे लोगों की भाँति केवल अनुमान ही लगा सकते हैं।

"काँय-काँय!" पहरा देने वाले कौवे ने ऊँची आवाज़ में यह सूचना दी कि दोहरे छज्जे की टोपीवाला एक छोटा-सा आदमी बन्दूक उठाये हुए 'अन्धी दलदल' की ओर जा रहा है और अब हमें खाने के लिए कुछ प्राप्त होने की आशा होनी चाहिए।

"काँय-काँय!" कौवी ने दूरी पर अपने घोंसले से जवाब दिया, जिसका अर्थ यह था

"मैं सुन रही हूँ और प्रतीक्षा कर रही हूँ!"

मेगपाई, जो कौवों के नजदीकी रिश्तेदार हैं, कौवों की बातचीत सुनकर चरचर करने लगे। यहाँ तक कि लोमड़ी ने भी, जो इसी क्षण चूहे का शिकार करने में असफल होकर लौटी थी, कौवों की बातचीत सुनकर अपना कान ऊपर उठाया।

मीत्या ने यह सुना, पर जरा भी नहीं डरा—वह डरे भी तो क्यों, वह तो इंसान की बनायी हुई पगडण्डी पर ही चल रहा था। उसके जैसा ही इंसान वहाँ से जा चुका है, इसलिए वह भी निडर होकर इस पगडण्डी पर जा सकता है। कौवे की काँय-काँय सुनकर वह घबराने के बजाय एक गाना गाने लगा :

काले कौवे, काले कौवे,
मेरे सिर के चारों ओर
उड़ उड़कर तू मत कर शोर।

गाना गाने से उसका हृदय तरंगित हो उठा और वह यह सोचने लगा कि पगडण्डी के कठिन और लम्बे रास्ते को कैसे छोटा किया जाये। नीचे नज़र डालने पर उसने पाया कि उसके पाँव द्वारा बनाये गये गड्ढे में फौरन पानी भर जाता था। उस पगडण्डी से जाने वाले सभी पाँवों ने पानी को हरी काईवाली सतह से काफ़ी नीचे कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप पगडण्डी के दोनों ओर, जो वास्तव में एक नाला था, सूखे किनारों के साथ-साथ ऊँची मीठी घास उग आयी थी। और इस घासकी बदौलत, जो वसन्त के शुरू में अन्य सभी जगह उगी हुई घास जैसी पीली न होकर सफ़ेद थी, मनुष्य द्वारा बनायी गयी बल खाती पगडण्डी को दूर तक देखा जा सकता था। मीत्या को दिखायी दिया कि दूरी पर गायब होने के पहले यह पगडण्डी साफ़ तौर पर बाईं ओर को मुड़ गयी है। उसने अपनी स्थिति जानने के लिए कम्पास पर नज़र डाली। सूई ने उत्तर की ओर संकेत किया, किन्तु यह पगडण्डी पश्चिम ओर जाती थी।

"टी-वी!" टिटहरी ने ऊँची आवाज़ में कहा।

"यह मैं हूँ, मैं हूँ!" जंगली मुर्ग ने मानो जवाब दिया।

"काँय-काँय!" कौवी को पहले से कहीं अधिक विश्वास दिलाते हुए कौवा बोला।

और नाटे देवदारों से मेगपाइयों का शोर सुनायी देने लगा।

अपने गिर्द घूमकर देखने पर मीत्या को साफ़, सुरक्षित वन-प्रांगण दिखायी दिया, जहाँ टीले नीचे-नीचे होते हुए अन्त में समतल भूमि में बदल गये थे। किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि वन-प्रांगण के समीप दूसरी ओर सफ़ेद लम्बी घास भी दिखायी दे रही थी, जो मनुष्य द्वारा बनायी गयी पगडण्डी की वफादार संगिनी थी। ऊँची सफ़ेद घास की सहायता से उस पगडण्डी को ढूँढ़कर, जो उत्तर दिशा में नहीं जाती थी, मीत्या ने अपने आपसे कहा : "मैं बाईं ओर को किसलिए मुड़ूँ और टीले के बाद टीला क्यों पार करूँ, जबकि वन-प्रांगण से थोड़ी ही दूरी पर पगडण्डी साफ़ दिखायी दे रही है?"

और वह निडर होकर साफ़-सुथरे वन-प्रांगण को लाँघता हुआ आगे बढ़ चला...

शुरू में तो मीत्या को दलदल की अपेक्षा कीचड़वाली सतह पर चलना काफ़ी आसान लगा। किन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे गया, त्यों-त्यों उसका पाँव अधिकाधिक नीचे धँसने लगा और उसे बाहर निकालना कठिन होता गया। यहाँ तो गोजन अधिक अच्छी तरह चल सकता था, क्योंकि उसकी लम्बी टाँगें बड़ी मज़बूत होती हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह सोचे-समझे बिना दलदल और जंगल में एक जैसी तेजी से दौड़ता रहता है। किन्तु मीत्या, जो अब खतरे से परिचित हो गया था, थोड़ी देर सोचने के लिए

रुक गया। ज्यों ही वह रुका, उसकी टाँगें घुटनों तक नीचे धँस गयीं। दूसरी बार वह इससे भी अधिक धँस गया। अभी भी वह यत्न करके दलदल से बाहर निकल सकता था। उसने अपनी बन्दूक को दलदल की सतह पर रखकर उसके सहारे दलदल से निकलने और लौटने का विचार बनाया। किन्तु तभी चन्द कदमों की दूरी पर उसे लम्बी सफ़ेद घास के साथ-साथ इंसानी पैरों के चिह्न दिखायी दिये।

"मैं इसे लाँघ जाऊँगा," उसने कहा।

और उसने आगे की ओर बढ़ने के लिए ज़ोर लगाया।

किन्तु अब देर हो चुकी थी। एक हताश घायल व्यक्ति की भाँति, जो यह कहकर अपनी हिम्मत बढ़ाता है कि मरना तो एक बार ही है, उसने आगे बढ़ने के लिए कई बार फिर से ज़ोर लगाया। किन्तु इसी वक्त उसने अनुभव किया कि वह सभी ओर से छाती तक मजबूत गिरफ्त में आ चुका है। अब तो वह गहरी साँस भी नहीं ले पाता था, क्योंकि जरा भी हिलने-डुलने से वह और गहरा धँस जाता था। उसके लिए अब इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि अपनी बन्दूक को दलदल की सतह पर फैलाकर रख दे, दोनों हाथ रखकर उस पर झुक जाये और अपनी तेज साँस को धीमा करने का यत्न करे। उसने ऐसा ही किया। उसने अपनी बन्दूक कन्धे से उतारी, उसे अपने सामने रखा और दोनों बाँहों के सहारे उस पर झुक गया।

हवा के एक तेज झोंके के साथ उसे नास्त्या की ऊँची आवाज़ सुनायी दी :

"मीत्या-आ-आ!"

मीत्या ने चिल्लाकर जवाब दिया।

किन्तु जहाँ नास्त्या खड़ी थी, हवा उस दिशा से आती हुई पश्चिम दिशा में जा रही थी और इसलिए मीत्या की आवाज़ 'ब्लूदोवो दलदल' को लाँघती हुई पश्चिम में जा गूँजी, जहाँ नाटे देवदारों के जमघट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। केवल लम्बी दुमवाले, कलगीदार और दुबले-पतले मेगपाई ही एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ते, 'अन्धी दलदल' के इर्द-गिर्द अपनी स्वाभाविक उत्तेजना से चक्कर काटते अथवा फर वृक्ष की फुनगियों पर बैठते हुए अपनी "द्रित-तित-ती" और "द्रत-तत-ता" की आवाज़ों द्वारा मीत्या की आवाज़ों का जवाब देते थे। अधिक ऊँचाई से कौवा कहता :

"काँय-काँय!"

हर बुरी बात को समझने में तेज मेगपाइयों ने दलदल में धँसे इस बालक की दीन दशा को जल्दी से भाँप लिया। देवदारों से भूमि पर नीचे आकर उन्होंने सभी ओर से उसे घेर लिया और अपने ढंग से उस पर झपटने लगे।

दोहरे छज्जे की टोपी वाले बालक ने चिल्लाना बन्द कर दिया। चमकते आँसुओं की धारा उसके सँवलाये गालों से नीचे बह रही थी।

9

जिस आदमी ने क्रेनबेरियों को कभी उगते न देखा हो, वह उनके पास से गुजरते हुए भी उनकी खोज में बहुत दूर-दूर तक दलदल में भटकता फिर सकता है। बिलबेरियों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं। इन्हें आसानी से देखा जा सकता है। ऊपर को उठा हुआ पतला-सा डंठल साफ़ दिखायी देता है और उसके सभी ओर होते हैं पंखों जैसे छोटे-छोटे हरे पत्ते। और छोटी-छोटी हल्की नीली बेरियाँ पत्तों की समीप ही लटकती नजर आ जाती हैं। काउबेरियों के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। वे रक्त की भाँति लाल होती हैं और उनके गहरे हरे रंग के पत्ते बर्फ़ के नीचे दबकर भी पीले नहीं होते और बेरियाँ इतनी अधिक होती हैं कि तमाम भूमि रक्त से सनी-सी लगती हैं। या फिर व्होरटलबेरियों को ले लीजिये। ये भी दलदल में ही, छोटी-छोटी झाड़ियों के रूप में उगती हैं। ये बेरियाँ हल्के नीले रंग की और आकार में कुछ अधिक बड़ी होती हैं। ये अपने आप ही दिखायी दे जाती हैं। सुनसान जगहों पर, जहाँ काले जंगली मुर्ग़े रहते हैं, लाल मणि के रंग की बेरियाँ गुच्छों के रूप में लटकती दिखायी देती हैं। प्रत्येक लाल मणि हरे पत्तों में जड़ी-सी रहती है। केवल क्रेनबेरियाँ ही अपने को छिपाये रखती हैं। विशेषकर वसन्त के आरम्भ में दलदली उभारों में इन बेरियों को ऊपर से देखा नहीं जा सकता। जब किसी एक जगह ही बहुत-सी बेरियाँ हों, तभी उन्हें आसानी से देखा जा सकता है और तब मन में यह ख़्याल आता है : "अवश्य ही किसी ने इन क्रेनबेरियों को नीचे गिरा दिया है," और उस वक्त तुम एक बेरी को चखने के लिए झुककर उठा लोगे। इसके बाद बेरियों से लदी बेल को ही खींच लोगे। तब तुम एक बड़े हार के आकार में जितनी भी लाल-लाह बेरियाँ चाहोगे, इकट्ठी कर सकोगे।

या तो इसलिए कि वसन्त में क्रेनबेरियाँ बहुत मँहगी होती है या इसलिए वे बहुत पौष्टिक और लाभदायक होती है तथा चाय के साथ बहुत मज़ा देती हैं, औरतें इन्हें चुनते हुए थकतीं ही नहीं और उनका लालच बढ़ता ही जाता है। एक बार हमारे गाँव की एक बुढ़िया ने अपनी टोकरी को बेरियों से इतना अधिक भर लिया था कि वह उसे उठा ही नहीं सकती थी। पर कुछ बेरियाँ फेंक दे या टोकरी को ही वहीं छोड़ दे, वह ऐसा करने को तैयार नहीं थी। इसलिए वह भरी टोकरी के पास बैठी हुई मुश्किल से मरते-मरते बची। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई औरत ऐसे स्थान पर पहुँच जाती है, जहाँ बेरियाँ ही बेरियाँ होती हैं। यह विश्वास करने के लिए कि कोई उसे देख तो नहीं रहा, वह सभी ओर दृष्टि दौड़ाती है और तब दलदली भूमि पर पेट के बल रेंगने लगती है और यह तक नहीं देखती कि दूसरी ओर से इंसान जैसी न लगने वाली एक अन्य औरत भी इधर भी रेंगती आ रही है और उन दोनों का आमना-सामना होने पर उनके बीच झगड़ा होने लगता है।

शुरू-शुरू में नास्त्या ने हर बेरी को उसकी टहनी से तोड़ा। जब भी उसे कोई लाल बेरी दिखती, वह तोड़ने के लिए झुक जाती। किन्तु शीघ्र ही उसने एक-एक बेरी के लिए झुकना बन्द कर दिया। वह एक बार में ही बहुत-सी बेरियाँ पाने की कोशिश करने लगी।

अब वह दूर से ही यह अनुमान लगा लेती थी कि किस जगह एक-दो नहीं, बल्कि मुट्ठी बेरियाँ मिल सकती हैं और वह केवल उसी जगह पर झुकती थी। इस प्रकार वह अपनी टोकरी में मुट्ठियाँ भर-भरकर बेरियाँ डालती गयी और हर बार पहले से अधिक बेरियाँ पाने के लिए उत्सुक होती गयी।

घर में काम करते हुए कभी एक घण्टा भी नहीं गुजर पाता था कि नास्त्या को अपने भाई का ध्यान न आये और वह उसे बुलाने की आवश्यकता न अनुभव करे। पर अब वह अकेला ही न जाने कहाँ चला गया था, नास्त्या को यह भी ध्यान नहीं आया कि खाने का सब सामान खुद उसी के पास है और उसका प्यारा भाई भूखा-प्यासा ही उस 'अन्धी दलदल' में कहीं चलता जा रहा है। वह तो अपने बारे में भी भूल गयी थी। उसे केवल क्रेनबेरियों की ही धुन सवार थी। वह अधिक, और अधिक बेरियाँ पाना चाहती थी।

वह अपने भाई से किसलिए उलझ पड़ी थी? इसलिए कि वह मनुष्य के पाँवों द्वारा भलीभाँति रौंदी हुई स्पष्ट पगडण्डी पर जाना चाहती थी। किन्तु अब क्रेनबेरियों के फेर में वह अनजाने ही खुद भी उस पगडण्डी से दूर हट चुकी थी।

एक क्षण के लिए वह तो जैसे अपनी नींद से जागी और सहसा उसने अनुभव किया कि अपनी पगडण्डी से दूर हट गयी है। वह उस तरफ़ को मुड़ी, जिधर उसकी समझ के अनुसार पगडण्डी होनी चाहिए थी, किन्तु पगडण्डी वहाँ नहीं थी। तब वह तेजी से दूसरी दिशा में गयी, जहाँ दो वृक्षों की पातहीन शाखाएँ ऊपर को उठी हुई थीं—वहाँ भी कोई पगडण्डी नहीं थी। हाँ, यही वह क्षण था, जब उसे कम्पास की, मीत्या ने उसके बारे में जो कुछ बताया था, उसकी और अपने प्यारे भाई मीत्या की भी याद आ सकती थी जो भूखा तथा अकेला घूम रहा था और वह उसे पुकार सकती थी।

शायद नास्त्या ने अपने भाई के सम्बन्ध में और अधिक सोचा होता, यदि उसी क्षण उसे कुछ ऐसा दिखायी न दे जाता जो क्रेनबेरी के दीवानों को जीवन में एक बार भी देखने को नहीं मिलता...

बालकों में इस बात को लेकर झगड़ा हुआ था कि वे कौन-सी पगडण्डी पर जायें। किन्तु वे इस बारे में अनजान थे कि दोनों पगडण्डियाँ—एक बड़ी तथा दूसरी छोटी—'अन्धी दलदल' गिर्द घूमकर 'सूखे नाले' के समीप मिल जाती थीं और अन्त में पेरेस्लाव्ल की बड़ी सड़क से जा मिलती थीं। नास्त्या की पगडण्डी सूखी घाटी में से 'अन्धी दलदल' के गिर्द चक्कर काटती हुई जाती थी, जबकि मीत्या की पगडण्डी दलदल के बिल्कुल किनारे-किनारे जाती थी। यदि मीत्या भूल न करता और पगडण्डी की ऊँची सफ़ेद घास पर नज़र टिकाये हुए ही चलता जाता, तो भी नास्त्या से बहुत पहले ही वहाँ पहुँच गया होता, जहाँ नास्त्या अब पहुँची थी। जूनिपर झाड़ियों से घिरी हुई यह वही जगह थी जिसे पैलेस्तीन का नाम दिया जाता है और जहाँ मीत्या कम्पास के सहारे पहुँचना चाहता था।

किन्तु यदि मीत्या वहाँ पहुँच भी गया होता, तो भी रक्त की भाँति लाल उस पैलेस्तीन में वह भूखे पेट और टोकरी के बिना क्या करता? नास्त्या अपनी बड़ी टोकरी लिए पैलेस्तीन में पहुँची। वह खाने-पीने की चीज़ों के सम्बन्ध में बिल्कुल भूल चुकी थी और वे खट्टी बेरियों के नीचे दबी पड़ी थीं।

काश कि सुनहरी मुर्गी जैसी और लम्बी टाँगोंवाली इस छोटी-सी लड़की को पैलेस्तीन का सुखद दृश्य अपने सम्मुख आने पर भी भाई का ख्याल आ जाता और वह चिल्लाकर यह कहती :

"यह रहा पैलेस्तीन, प्यारे मीत्या!"

ओ भविष्यदर्शी जंगली कौवे! सम्भवतः तुम तीन सौ साल से जी रहे हो और निश्चय ही तुमने अपनी माँ से वह सभी कुछ जान लिया होगा जो तीन सौ वर्षों की लम्बी आयु में उसने जाना था। इस प्रकार हज़ारों वर्ष तक जो कुछ इस दलदल में हुआ है, उसकी सारी जानकारी एक पक्षी से दूसरे पक्षी को उत्तराधिकार में मिलती रही है। तुमने तो इतना कुछ देखा और जाना है, तुम थोड़ी देर को अपना कौवे का कार्य छोड़कर अपने सशक्त पंखों के सहारे एक सन्देश क्यों नहीं ले जाते, अपनी निडरता और बेतुकी दिलेरी के कारण दलदल में धँसकर प्राण देते हुए भाई का सन्देश, जिसे बेहद प्यार करने वाली, मगर बेरियों के फेर में पड़ने वाली बहन भूल गयी थी।

ओ कौवे, उसे जाकर यह बताओ...

"काँय-काँय!" मृत्यु के मुँह में जाते हुए बालक के सिर के ऊपर से उड़ता हुआ कौवा चिल्लाया।

"मैं सुन रही हूँ," कौवी ने इसी काँय-काँय की आवाज़ में अपने घोंसले से जवाब दिया। "देखो! इससे पहले कि दलदल उसे निगल जाये, कुछ न कुछ हासिल कर लो।"

"काँय-काँय!" कौवे ने खतरे में पड़े भाई से थोड़ी दूर गीली ज़मीन पर रेंगती हुई बहन के ऊपर से उड़ते हुए दोहराया। इस बार उसकी "काँय-काँय" का यह मतलब था कि दलदल पर रेंगती हुई छोटी-सी लड़की कौवा परिवार के भोजन के लिए और भी अधिक उपयुक्त हो सकती है।

पैलेस्तीन के मध्य में क्रेनबेरियाँ नहीं थीं। यहाँ ऐस्प वृक्षों के झुण्डों से ढका हुआ एक छोटा-सा टीला था और उन वृक्षों के झुण्ड में एक बहुत बड़ा गोजन खड़ा था। गोजन एक ओर से देखने पर साँड़ जैसा लगता है और दूसरी ओर से साधारण घोड़े

जैसा। सुडौल शरीर, फुर्तीली, पतली टाँगें और सूँघने की तेज शक्ति रखने वाली नुकीली नाक। किन्तु उसकी थूथनी कैसी टेढ़ी है, उसके सींग और आँखें कैसी अच्छी हैं! उसे देखने पर ऐसा लगता है कि शायद वह न तो साँड़ है और न घोड़ा ही। शायद वास्तव में वहाँ कुछ भी नहीं, बल्कि ऐस्प वृक्ष के घने झुण्डों में से दिखायी देने वाला बड़ा और धुँधला-सा माया-जाल मात्र है। किन्तु नहीं, वह माया-जाल ही नहीं है, कुछ और भी है। क्या इस बड़े वन्य पशु के मोटे होंठों ने वृक्ष को नहीं छुआ था और क्या वृक्ष के नाजुक तने पर एक छोटा-सा सफ़ेद निशान नहीं पड़ गया था? यह वन्य-पशु इस प्रकार अपने पेट को भरता है। और शायद ही कोई ऐसा ऐस्प वृक्ष होगा जिस पर इसके दाँतों के निशान न दिखायी देते हों। नहीं, नहीं, यह इतनी स्थूल और भारी-भरकम काया दलदल का छलावा ही नहीं हो सकती। किन्तु यह कितनी अविश्वसनीय बात लगती है कि इतना बड़ा वन्य-पशु ऐस्प वृक्ष की छाल और दलदल की तिपत्ती घास खाकर जीवित रहता है! और क्यों इतनी ताकत रखने वाला इंसान खट्टी बेरियों तक को देखकर लालच से भर जाता है?

एस्प वृक्ष की छाल को छीलता हुआ ऊँचा गोजन रेंगती जा रही उस लड़की को शान्त भाव से देख रहा था।

क्रेनबेरियों के अतिरिक्त अन्य सभी चीज़ों की सुध भूलकर वह एक बड़े और काले ठूँठ की तरफ़ रेंगती जा रही थी। भीगी और मिट्टी में सनी हुई यह लड़की, जिसे हम लम्बी टाँगोंवाली तथा सुनहरी मुर्गी के समान जानते थे, बड़ी कठिनाई से ही टोकरी को अपने पीछे-पीछे घसीट पा रही थी।

गोजन तो उसे इंसान भी मानने को तैयार नहीं था, क्योंकि उसके तौर-तरीके पशुओं से कुछ भिन्न नहीं थे और उन्हें वह वैसे ही उदासीनता से देखने का आदी था जैसे हम पत्थरों को देखा करते हैं।

एक बड़ा, काला ठूँठ सूर्य की किरणों को अपने भीतर समेटकर बहुत गर्म हो गया था। सन्ध्या हो रही थी और हवा तथा आसपास की सभी वस्तुएँ ठण्डी होती जा रही थीं। किन्तु यह बड़ा और काला ठूँठ अभी तक सूर्य की रश्मियों की उष्णता को सहेजे हुए था। छोटी-छोटी छः छिपकलियाँ दलदल से बाहर निकलकर उष्ण तने से जा चिपटीं; नींबू के रंगवाली चार तितलियों ने भी अपने पंखों को समेटा तथा बालोंवाली अपनी लम्बी नाक को उससे चिपकाकर बैठ गयीं और बड़ी-बड़ी काली मक्खियों ने भी अपने रात्रि-विश्राम के लिए उसी पर जाकर डेरा लगा लिया। क्रेनबेरी की एक लम्बी शाखा घास की डण्डियों तथा काले गर्म ठूँठ के हर उभरे भाग को छूती हुई उसके चारों ओर लिपटी हुई थी। ठूँठ के गिर्द कई घेरे डालकर वह दूसरी ओर नीचे को जा झुकी थी। इस मौसम में जहरीले साँप किसी गर्म जगह की तलाश करते रहते हैं और एक, आध मीटर लम्बा बड़ा साँप ठूँठ पर चढ़कर क्रेनबेरी की शाखा के सिरे पर कुंडली मारकर

बैठ गया।

दलदल में रेंगनेवाली इस छोटी-सी लड़की ने एक बार भी अपना सिर ऊपर उठाकर इधर-उधर नहीं देखा। वह इसी तरह उस काले ठूँठ तक जा पहुँची और उसने क्रेनबेरी की उस शाखा को पकड़ लिया जिस पर साँप बैठा था। साँप ने अपना सिर ऊपर उठाकर फँकार छोड़ी। लड़की ने भी चौंककर अपना सिर ऊपर उठाया।

बस, नास्त्या अभी सम्भली और उछलकर पीछे हट गयी। इसी वक्त गोजन ने उसे इंसान के रूप में पहचाना और कूदकर ऐस्प वृक्षों के झुण्ड से बाहर चला गया। वह छलिया दलदल पर अपनी लम्बी और डण्डे जैसी मजबूत टाँगों को हल्के-हल्के, किन्तु तेजी से टिकाता हुआ उसी भाँति दौड़ चला जैसे खुश्क भूमि पर ख़रगोश दौड़ता है।

गोजन के कारण डरी हुई नास्त्या ने हैरानी से साँप की ओर देखा जो अब फिर पहले की भाँति ही कुण्डली मारकर धूप में लेटा हुआ था। नास्त्या को लगा मानो वह स्वयं ही ठूँठ पर कुण्डली मारे बैठी थी और साँप की सी केंचुली उतारकर न जाने कहाँ खड़ी थी।

उससे कुछ कमद की दूरी पर भूरे रंग और पीठ पर काली चिड़ियोंवाला एक बड़ा-सा कुत्ता खड़ा हुआ उसकी ओर देख रहा था। यह त्राव्का थी। नास्त्या ने उसे तत्काल पहचान लिया, क्योंकि त्राव्का अन्तीपिच के साथ कई बार गाँव आ चुकी थी। किन्तु उसे उसका नाम ठीक तौर पर याद नहीं था और इसलिए उसने उसे इस तरह पुकारा :

"मुराव्का, मुराव्का, यहाँ आओ, मैं तुम्हें रोटी दूँगी!"

यह कहकर उसने अपना हाथ टोकरी की ओर बढ़ाया। टोकरी क्रेनबेरियों से ऊपर तक ठसाठस भरी हुई थी और रोटी उनके नीचे थी।

इतनी बड़ी टोकरी भरने में कितने घण्टे लग गये थे, एक-एक क्रेनबेरी बटोरते हुए कितना वक्त बीत गया था! तो इस बीच भूख से तड़पता हुआ मेरा प्यारा भाई कहाँ रहा, मैं उसे भूल क्यों गयी, मैंने अपने को और आसपास की हर वस्तु को भुला कैसे दिया?

उस ठूँठ पर, जहाँ साँप कुण्डली मारे बैठा था, उसने एक बार फिर नज़र डाली और अचानक चीख मारकर ज़ोर से चिल्ला उठी :

"मीत्या, मेरे प्यारे भाई!"

और वह टोकरी के समीप भूमि पर गिरकर बिलखने लगी।

यही वह चीख थी जो 'अन्धी दलदल' में पहुँची थी और जिसे सुनकर मीत्या ने जवाब दिया था। मगर हवा उसका जवाब दूसरी दिशा में ले उड़ी थी।

10

तेज हवा का वह झोंका, जो नास्त्या की पुकार को मीत्या तक लाया था, सूर्यास्त के समय की निस्तब्धता से पहले अन्तिम नहीं था। उस समय डूबता हुआ सूरज मोटी तहवाले बादल के एक टुकड़े के पीछे से गुजर रहा था और वहाँ से उसके सुनहरे सिंहासन के पाये पृथ्वी को छू रहे थे।

हवा का वह झोंका भी अन्तिम नहीं था जो मीत्या द्वारा चीखकर दिये गये जवाब को दूसरी दिशा में उड़ा ले गया था।

हवा का अन्तिम झोंका तब आया, जब सूर्य के सुनहरे सिंहासन के पाये धरती में धँसते-से दिखायी देने लगे और एक बहुत बड़े, स्पष्ट, सिन्दूरी गोले ने क्षितिज को छुआ। मधुर आवाज़ में गाने वाली छोटी-सी चिड़िया ने घाटी में अपनी मधुर तान छेड़ी। कोसाच ने 'समतल पत्थर' के समीपवर्ती शान्त वृक्षों में कुछ डरते-डरते अपना मिलनगान फिर से आरम्भ कर दिया। सारसों ने अपनी तीन आवाज़ें लगायीं, जो उनकी प्रातःकालीन विजय-पुकारें नहीं थीं, किन्तु जिनका कुछ ऐसा अर्थ रहा होगा :

"सो रहे हो, किन्तु याद रखो कि शीघ्र ही हम तुम सब को जगा देंगे, जगा देंगे, जगा देंगे!"

हवा के तेज झोंके के साथ नहीं, बल्कि अन्तिम धीमे निःश्वास के साथ दिन का अन्त हुआ। तब पूर्ण निस्तब्धता छा गयी और मामूली-सी आवाज़ें, यहाँ तक कि 'सूखे नाले' के पास वाली झाड़ियों में बैठे हुए तीतरों की धीमी सीटियाँ भी सुनायी देने लगीं।

यह समझकर कि एक इंसान मुसीबत में है, त्राव्का सिसकती हुई नास्त्या के समीप आयी और उसने उसके आंसुओं से भीगे नमकीन गाल को चाटा। घड़ी भर के लिए नास्त्या ने अपना सिर ऊपर उठाया, त्राव्का की ओर देखा और फिर से अपने सिर को बेरियों से भरी टोकरी के ऊपर टिका दिया। त्राव्का क्रेनबेरियों की तहों के नीचे रोटी की गन्ध अनुभव कर रही थी और बेशक वह बेहद भूखी थी, फिर भी टोकरी में अपने पंजे खोंसने की बात सोच भी नहीं सकती थी। इसके विपरीत, एक इंसान को मुसीबत में देखकर उसने अपना सिर ऊपर उठाकर चिल्लाना शुरू किया।

मुझे याद आ रहा है कि बहुत बरस पहले एक बार, जैसा कि पुराने वक्तों में होता था, हम तीन घोड़ोंवाली, 'त्रोइका' गाड़ी में जंगली मार्ग से जा रहे थे। त्रोइका की घण्टियाँ बज रही थीं। उस दिन भी आज की भाँति सन्ध्या हो रही थी। कोचवान ने अचानक ही घोड़ों को रोककर कुछ देर तक ध्यान से सुनने के बाद कहा था :

"कहीं कोई मुसीबत अवश्य आई है!"

हमें भी कुछ सुनायी दे रहा था।

"क्या बात है?"

"कहीं कोई मुसीबत आई है, जंगल में कुत्ता रो रहा है।"

उस शाम को हम यह मालूम न कर पाये थे कि वहाँ क्या घटना घटी थी। शायद तब भी दलदल किसी इंसान को निगल रही थी और इंसान का वफादार साथी कुत्ता उसे विदा करता हुआ रो रहा था।

सन्ध्या की नीरवता में जब त्राव्का हूँकी, तो भूरा भेड़िया फौरन समझ गया कि आवाज़ पैलेस्तीन की ओर से आ रही है और वह सीधे उधर ही चल दिया।

किन्तु त्राव्का ने शीघ्र ही हूँकना बन्द कर दिया। भूरा भेड़िया रुककर फिर से कुत्ते के हूँकने की प्रतीक्षा करने लगा।

तभी त्राव्का ने 'समतल पत्थर' की ओर से रुक-रुककर आने वाली किसी जानवर की सुपरिचित और धीमी ध्वनि सुनी।

त्राव्का फौरन समझ गयी कि वह ख़रगोश का पीछा करने वाली लोमड़ी की आवाज़ है। अपनी साधारण तर्क-बुद्धि से वह यह भाँप गयी थी कि लोमड़ी ने भी उसी ख़रगोश की गन्ध पा ली है जिसे खुद उसने भी 'समतल पत्थर' के समीप अनुभव किया था। त्राव्का यह भी जानती थी कि चालाकी किये बिना लोमड़ी कभी भी ख़रगोश को पकड़ने में सफल न हो सकेगी। वह इसलिए भौंक रही थी कि ख़रगोश भाग-भागकर थक जाये और जब थककर किसी बिल में जा लेटेगा, तो उसे पकड़ लेगी। अन्तीपिच की मृत्यु के बाद त्राव्का ने अपनी खुराक हासिल करने का यही तरीका बना लिया था। जब वह किसी लोमड़ी की भूँक सुनती, तो जिधर से लोमड़ी की आवाज़ आती होती, भेड़ियें की भाँति वह उसी दिशा में पहुँच जाती। और जिस प्रकार भेड़िया ख़रगोश के पीछे भोंकने वाले कुत्ते का इन्तजार करता हुआ छिपकर खड़ा रहता है, उसी भाँति वह भी किसी झाड़ी में छिपकर खड़ी रहती और लोमड़ी जिस ख़रगोश का पीछा कर रही होती, उसके नजदीक आने पर उसे पकड़ लेती।

लोमड़ी की भूँक सुनते हुए त्राव्का हम शिकारियों की भाँति यह समझ जाती थी कि भागता हुआ ख़रगोश कौन-सा मार्ग अपनायेगा। वह 'समतल पत्थर' से 'अन्धी दलदल' की ओर भागेगा, वहाँ से 'सूखे नाले' की तरफ़, फिर वहाँ से एक लम्बा चक्कर काटकर पैलेस्तीन में पहुँचेगा और वहाँ से पुनः 'समतल पत्थर' की तरफ़ लौट आयेगा। इसलिए त्राव्का सीधी 'समतल पत्थर' की ओर चली गयी और जूनिपर की घनी झाड़ी के पीछे छिपकर बैठ गयी।

उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसके तेज कानों ने शीघ्र ही दलदली डबरों से आती हुई ख़रगोश के पंजों की चाप सुनी। इंसानी कानों के लिए इस आवाज़ को सुन पाना असम्भव था। पानी से भरे ये वही डबरे थे जो नास्त्या के पद-चिह्नों से उसी सुबह को बने थे। कुछ ही क्षण में ख़रगोश 'समतल पत्थर' के समीप पहुँचने वाला था।

त्राव्का झाड़ी के पीछे दुबकी बैठी थी। उसने झपटने के लिए अपनी पिछली टाँगों को तैयार किया हुआ था और जैसे ही उसे ख़रगोश के दो कान दिखायी दिये, वह उस पर झपटी।

किन्तु यह बड़े आकार का बूढ़ा ख़रगोश, जो लँगड़ाता हुआ कठिनाई से भाग रहा था, न जाने क्या सोचकर इसी वक्त अपनी पिछली टाँगों पर बैठ गया और यह अनुमान लगाने लगा कि भोंकने वाली लोमड़ी और उसके बीच कितना फासला है।

त्राव्का का झपटना और ख़रगोश का सहसा रुक जाना, दोनों क्रियाएँ एक साथ ही हुई।

इस प्रकार त्राव्का ख़रगोश से आगे निकल गयी।

जब तक त्राव्का ठीक दिशा में लौटी, तब तक ख़रगोश छलाँगें मारता हुआ मीत्यावाले मार्ग पर 'अन्धी दलदल' की ओर दूर तक बढ़ चुका था।

इस प्रकार त्राव्का का भेड़िये की तरह शिकार करने का तरीका सफल न हो पाया। अब रात होने तक ख़रगोश के लौटने की सम्भावना नहीं थी। कुत्ते के शिकार के तरीके को अपनाते हुए त्राव्का ख़रगोश के पीछे दौड़ी और ज़ोर की एक चीख मारकर उसने सन्ध्या के शान्त वातावरण को अपनी भूँक से गुँजा दिया।

कुत्ते की आवाज़ सुनकर लोमड़ी ने ख़रगोश का पीछा करने का ख्याल छोड़ दिया और वह खेत की चुहियाँ पकड़ने की अपनी साधारण दिनचर्या में लग गयी... उधर जब भूरे भेड़िये ने आखिर कुत्ते की चिर-प्रतीक्षित भूँक सुनी, तो तेज़ी से 'अन्धी दलदल' की ओर दौड़ चला।

11

ख़रगोश के पाँवों की आहट मिलने पर 'अन्धी दलदल' के मेगापाई दो दलों में बँट गये। एक दल बालक के समीप आकर चिल्लाया :

"द्रित-तित-ती-ई!"

दूसरे दल ने ख़रगोश को सम्बोधित करते हुए कहा :

"द्रत-तत-ता-आ!"

मेगपाइयों के इस शोर को समझना और इसका अर्थ लगाना कठिन था। यह मदद के लिए किसी को बुलाने का निमंत्रण तो नहीं हो सकता था। कारण कि यदि उनका शोर सुनकर कोई मनुष्य अथवा कुत्ता यहाँ आ जाता, तो वे खुद ही घाटे में रहते। शायद वे अपने शोर से सभी मेगपाइयों को रक्त की दावत उड़ाने के लिए बुलाना चाहते थे। कौन जाने...

"द्रित-तित-ती-ई!" उस नन्हे-से इंसान के अधिक समीप जाते हुए वे चिल्लाये।

वे उस छोटे-से आदमी के बिल्कुल नजदीक जाने का साहस नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि अभी तक उसके हाथ पूरी तरह मुक्त थे। सहसा ही इन मेगपाइयों में एक प्रकार की गड़बड़ मच गयी। और अलग-अलग आवाज़ों की जगह वे सभी कभी "द्रत-तत-ता-आ" और कभी-कभी "द्रित-तित-ती-ई" का शोर मचाने लगे।

यह इस बात का संकेत था कि ख़रगोश 'अन्धी दलदल' के पास पहुँच रहा है।

यह ख़रगोश पहले भी कई बार त्राव्का से बच निकला था, वह जानता था कि त्राव्का नजदीक आती जा रही है और इसलिए कोई चाल चलनी चाहिए। उसने ऐसा ही किया। मीत्या से थोड़ी दूरी पर यह दलदल के किनारे ही रुक गया और इस प्रकार उसने मेगपाइयों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वे सभी फर वृक्षों की फुनगियों पर जा बैठे और ख़रगोश को देखकर शोर मचाने लगे :

"द्रत-तत-ता-आ-आ!"

न जाने क्यों, मगर ख़रगोश मेगपाइयों के इस शोर को कोई महत्व नहीं देते और उनकी ओर ध्यान न देकर अपनी क्रीड़ा में लगे रहते हैं। इसीलिए कई बार यह ख्याल आता है कि मेगपाइयों के इस शोर का कोई अर्थ नहीं होता और ये भी इंसानों की भाँति अपनी ऊब मिटाने और समय गुजारने के लिए व्यर्थ बकवास करते रहते हैं।

थोड़ी देर के लिए अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर ख़रगोश ने एक दिशा में अपनी पहली लम्बी छलाँग लगायी, कुछ देर रुककर दूसरी तरफ़ बड़ी छलाँग लगायी और फिर कुछ छोटी-छोटी छलाँगें लगाने के बाद तीसरी दिशा में लम्बी छलाँग लगायी और अपने पद-चिह्नों पर नज़र टिकाकर लेट गया, ताकि यदि त्राव्का उसकी इन चालों को समझकर उसे खोज ही निकाले, तो वह उसे पहले से ही देख सके...

अरे हाँ! ख़रगोश चालाक है, बहुत चालाक। किन्तु उसकी ये चालाकियाँ खतरनाक भी सिद्ध हो सकती हैं, क्योंकि एक चतुर शिकारी कुत्ता भी यह जानता है कि ख़रगोश हमेशा अपने पदचिह्नों पर नज़र टिकाये रहता है और अपने शिकार को पदचिह्नों के आधार पर नहीं, बल्कि विश्वसनीय गन्ध की मदद से पकड़ने की कोशिश करता है।

कुत्ते की भूँक बन्द हो जाने पर यह जानकर कि उसने उसे खोजने के लिए अपना भयानक चक्कर लगाना शुरू कर दिया है, इस मासूम जानवर का दिल बैठने लगा...

इस बार किस्मत ने ख़रगोश का साथ दिया। उसने अनुभव किया कि दलदल में चक्कर काटती हुई कुतिया का ध्यान अवश्य ही किसी अन्य वस्तु की ओर चला गया है। अचानक उसे किसी इंसान की आवाज़ साफ़ तौर पर सुनायी दी और इसके बाद बड़ी हड़बड़ी-सी मची...

यह सोचा जा सकता है कि ख़रगोश ने यह सब शोर सुनकर अपने आपसे कुछ इस प्रकार कहा होगाः "अब भाग निकलना चाहिए!" और वह चुपचाप 'समतल पत्थर' की

ओर लौट गया।

ख़रगोश का पीछा करती हुई त्राव्का जब तेजी से दलदल को लाँघ रही थी, तो कोई दस कदम आगे जाने पर एक छोटा-सा आदमी उसे अपने सामने दिखायी दिया। वह ख़रगोश के सम्बन्ध में सभी कुछ भूल-भालकर बुत बनी खड़ी रह गयी।

दलदल में फँसे उस छोटे-से आदमी को देखकर कुतिया ने अपने मन में क्या सोचा होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। यह तो हम ही एक दूसरे के लिए भिन्न हैं। किन्तु त्राव्का के लिए तो सिर्फ दो ही तरह के इंसान थे—एक तो विभिन्न चेहरों वाले अन्तीपिच और दूसरे अन्तीपिच के शत्रु। इसीलिए एक अच्छा और समझदार कुत्ता किसी इंसान को देखते ही उसकी ओर नहीं बढ़ता, बल्कि यह सोचता है कि वह इंसान उसका स्वामी है या स्वामी का शत्रु।

इसलिए त्राव्का डूबते सूर्य की अन्तिम किरणों की चमक में उस बालक के मुँह पर दृष्टि जमाये खड़ी थी।

शुरू में तो बालक की आँखें बुझी-बुझी और निर्जीव थीं, किन्तु सहसा उनमें ज्योति चमक उठी और त्राव्का ने उसे तत्क्षण ही देख लिया।

"सम्भवतः यह अन्तीपिच ही है," त्राव्का ने सोचा।

और उसने धीरे से अपनी दुम हिलायी।

जाहिर है कि हमारे लिए यह बताना सम्भव नहीं कि त्राव्का किस आधार पर यह निर्णय करती थी कि कौन अन्तीपिच है तथा कौन नहीं। किन्तु हम कुछ अनुमान अवश्य लगा सकते हैं। क्या आपको याद है, क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ है कि जंगल के बीच ठहरे पानी के एक ताल में अचानक ही आपने किसी एक बहुत सुन्दर और आकर्षक आदमी की परछाईं देखी हो, ऐसे आदमी की जैसा कि त्राव्का के लिए अन्तीपिच था? वह आपके पीछे खड़ा हुआ ताल में वैसे ही झाँक रहा हो, जैसे कोई दर्पण में झाँकता है। प्रकृति के उस दर्पण में आपको बादलों, वृक्षों ओर डूबते सूरज के सोने-ताँबे, एक कोने में मुस्कुराते हुए दूज के चाँद की प्यारी आभा और तारों के झुरमुटों से घिरी हुई यह परछाईं बहुत प्यारी लगती है...

सम्भवतः त्राव्का को सभी मनुष्यों में अन्तीपिच की परछाईं इसी भाँति दिखायी देती थी। शायद वह हर इंसान की बाँहों में दौड़ती हुई चली जाती, यदि अनुभव ने उसे यह न सिखाया होता कि अन्तीपिच की सूरत वाला इंसान अन्तीपिच का शत्रु भी हो सकता था।

इसलिए वह प्रतीक्षा कर रही थी।

किन्तु धीरे-धीरे उसके पंजे भी दलदल में धँसने लगे। देर तक एक ही जगह पर खड़े रहने से कुत्ते के पंजे भी दलदल में धँस सकते हैं और वह उन्हें बाहर निकालने में असमर्थ हो जाता है। और अधिक प्रतीक्षा करना सम्भव नहीं था। अचानक...

न बादल गरजा, न बिजली कड़की, न विजय-ध्वनियों के साथ सूर्योदय हुआ, न सारसों के नये सुन्दर दिवस के आश्वासन के साथ सूर्यास्त हुआ। नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। सम्भवतः प्रकृति की कोई भी दूसरी घटना त्राव्का के साथ इस दलदल में घटनेवाली घटना से अधिक अद्भुत नहीं हो सकती थी उसने इंसानी भाषा में एक शब्द सुना और क्या कमाल का था वह शब्द भी!

अन्तीपिच सच्चे अर्थों में एक महान शिकारी थे। उन्होंने अपनी शिकारी कुतिया को एक शिकारी के अनुरूप ही नाम भी दिया था। इसका नाम रूसी भाषा की "जत्राबीत" धातु (शिकार का पीछा करना) से निकाला गया था। शुरू-शुरू में हमारी त्राव्का जत्राव्का नाम से पुकारी जाती थी, किन्तु बाद में शिकार से सम्बन्धित यह नाम संक्षिप्त होकर सुन्दर त्राव्का बन गया। अन्तीपिच जब अन्तिम बार हमारे गाँव में आये थे, उस समय भी उनकी इस शिकारी कुतिया का नाम जत्राव्का ही था। और मीत्या की आँखों में जब चमक दिखायी दी, तो इसका यही अर्थ था कि उसे सहसा कुतिया का नाम याद आ गया था। तब उस बालक के मुरझाये, नीले होंठों पर सुर्खी दौड़ने लगी और वे लाल होकर फड़फड़ाने लगे। त्राव्का ने इस छोटे से आदमी के होंठों को इस तरह हिलते देखा और इसीलिए उसने दूसरी बार अपनी दुम हिलायी। और तब वह हुआ, जो त्राव्का के लिए चमत्कार के समान था। पुराने दिनों के बूढ़े अन्तीपिच की भाँति छोटे और नये, बालक अन्तीपिच ने उसे पुकारा :

"जत्राव्का!"

उसे अन्तीपिच के रूप में पहचानकर त्राव्का तत्काल ही भूमि पर लेट गयी।

"सुनो तो!" अन्तीपिच ने कहा, "मेरे पास आओ, तुम तो बड़ी समझदार हो न!"

और त्राव्का धीरे-धीरे उसकी तरफ़ रेंगने लगी।

किन्तु यह छोटा-सा आदमी केवल मित्रता की भावना से प्रेरित होकर उसे अपने पास नहीं बुला रहा था, जैसाकि त्राव्का ने शायद अपने मन में समझा होगा। उसके शब्दों में केवल खुशी और मित्रता ही नहीं थी, जैसा कि त्राव्का समझ रही थी, बल्कि अपनी रक्षा की चालाकी से भरी हुई एक योजना भी छिपी थी। काश! वह किसी ऐसे ढंग से उसे अपनी योजना बता सकता, जो उसकी समझ में आ जाती, तो वह कितनी खुशी से उसकी जान बचाने के लिए उसकी तरफ़ लपकती! किन्तु मीत्या किसी प्रकार भी ऐसा नहीं कर सकता था और इसलिए मधुर शब्दों द्वारा उसे धोखा देने के लिए विवश था। यह भी ज़रूरी था कि त्राव्का उससे डरती रहे, क्योंकि यदि ऐसा न हुआ, यदि वह महान और शक्तिशाली अन्तीपिच का कुछ मधुर-सा डर महसूस नहीं करेगी और प्यार में आकर उसके कन्धों पर जा चढ़ेगी, तो दलदल निश्चय ही इन दोनों को निगल जायेगी। त्राव्का ने जैसी कल्पना की थी, यह छोटा-सा आदमी इस वक़्त इतना महान नहीं हो सकता था। उसके लिए चालाकी से काम लेना ज़रूरी था।

"जत्राव्का, प्यारी जत्राव्का!" वह उसे प्यार से बुलाता रहा।

मगर खुद मन में यही चाहता रहा :

"रेंगती रहो, बस, ऐसे रेंगती ही चली आओ!"

और त्राव्का अपने निश्छल मन में इस नये अन्तीपिच के स्पष्ट शब्दों की प्रति छल-कपट का हल्का-सा सन्देह लिये जब-तब रुकती हुई उसकी ओर रेंगती चली गयी।

"मेरी प्यारी, कुछ और आगे आ जाओ, कुछ और!" मीत्या ने कहा।

किन्तु इसी वक्त वह मन ही मन यह भी कह रहा था : "केवल रेंगती चली आओ, रेंगती हुई ही।"

धीरे-धीरे रेंगती त्राव्का उसके पास पहुँच गयी। अब मीत्या दलदल पर रखी हुई अपनी बन्दूक का सहारा लेकर थोड़ा आगे को झुक सकता था तथा हाथ से त्राव्का का सिर थपथपा सकता था। किन्तु यह चालाक छोटा आदमी जानता था कि जैसे ही वह उसे जरा भी थपथपायेगा, वैसे ही कुतिया खुशी से चीखती हुई उसकी ओर लपकेगी तथा उसे डुबो देगी।

इसलिए छोटे आदमी ने अपने मन को मजबूत कर लिया। एक ऐसे योद्धा की भाँति, जो जीवन-मरण की बाजी का अन्तिम दाँव चलने की प्रतीक्षा में हो, मीत्या भी अपनी साँस रोककर ऐसे ही सही पल का अनुमान लगा रहा था।

एक पल और गुजर जाता, तो त्राव्का उसके कन्धों पर जा चढ़ती। किन्तु छोटे आदमी ने अपना अनुमान लगानेमें गलती नहीं की। उसने अपना दायाँ हाथ आगे बढ़ाकर उस मजबूत कुतिया को उसकी पिछली बाईं टाँग से पकड़ लिया।

ऐसा धोखा तो शायद दुश्मन ही दे सकता था!

त्राव्का ने पूरा ज़ोर लगाकर मुक्त होने का यत्न किया और वह इस छोटे आदमी के हाथ से निकल भी गयी होती, यदि दलदल से आधे बाहर निकले हुए इस आदमी ने उसकी दूसरी पिछली टाँग को भी न पकड़ लिया होता। आन की आन में वह पेट के बल अपनी बन्दूक पर लेट गया और त्राव्का को छोड़कर खुद कुत्ते की भाँति हाथों-पैरों के बल रेंगने लगा। ऐसा करते हुए वह अपनी बन्दूक को भी आगे सरकाता जाता था। इस तरह से रेंगता हुआ वह उस पगडण्डी तक पहुँच गया, जहाँ इंसान निरन्तर आते-जाते थे ओर जहाँ उनके पद-चिह्नों के दोनों ओर लम्बी-लम्बी सफ़ेद घास उगी हुई थी। वहाँ पहुँचते ही वह उठकर खड़ा हो गया, उसने चेहरे से आँसुओं की अन्तिम बूँदें पोंछीं, चिथड़ों पर से मिट्टी झाड़ी और एक वयस्क की भाँति अधिकारपूर्ण स्वर में बोला :

"अब इधर आओ, मेरी प्यारी त्राव्का!"

इन शब्दों ने और जिस अन्दाज़ में वे कहे गये थे, त्राव्का की हिचकिचाहट का अन्त कर दिया—अब उसके सामने उसका पहले वाला प्यारा अन्तीपिच खड़ा था। खुशी से चीखती और अपने स्वामी को पहचानती हुई वह उसकी ओर दौड़ी और मीत्या ने अपने

मित्र की नाक, उसके कानों तथा आँखों को चूमा।

तो क्या स्वर्गीय वन-रक्षक अन्तीपिच के रहस्यपूर्ण शब्दों के सम्बन्ध में हम जो सोचते हैं, अब हमें अपने पाठकों से उन्हें कह नहीं देना चाहिए? क्या हमें वह "सत्य" भी नहीं बता देना चाहिए जिसे उन्होंने हमारे ठीक समय पर न पहुँच पाने की स्थिति में त्राव्का के कान में कह देने का वचन दिया था? हमारे विचार में अन्तीपिच ने सिर्फ मज़ाक नहीं किया था। बहुत सम्भव है कि जिस रूप में त्राव्का अन्तीपिच को समझती थी अथवा हमारे मुताबिक इस इंसान ने समस्त मानव जाति और उसके पुरातन इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हुए एक महान इंसानी सत्य को अपने श्वान-मित्र के कानों में फुसफुसा दिया हो। हमारे ख्याल में यह सत्य है—प्यार के लिए मनुष्य का स्थायी और कठोर संघर्ष।

12

इस महत्वपूर्ण दिन में 'ब्लूदोवो दलदल' में जो घटनायें घटीं, उनके सम्बन्ध में अब हमें थोड़ा-सा ही कुछ और कहना है। यह दिन काफ़ी बड़ा रहा था, फिर भी त्राव्का की सहायता से मीत्या के दलदल से निकल आने पर भी इसका अन्त नहीं हुआ। अन्तीपिच से पुनर्मिलन की प्रथम प्रसन्नता के बाद त्राव्का को फिर से ख़रगोश के अधूरे छोड़े गये अपने शिकार की याद आयी। त्राव्का शिकारी कुतिया थी और इसलिए शिकार करना उसका मुख्य काम था, किन्तु अपने अन्तीपिच के लिए ख़रगोश को पकड़ना उसका सबसे बड़ा सुख था। मीत्या को अन्तीपिच के रूप में पहचानकर उसने फिर चक्कर लगाना शुरू कर दिया। शीघ्र ही ख़रगोश के पद-चिह्न ढूँढ़कर वह ज़ोर से भौंकती हुई ताज़ा पद-चिह्नों की तरफ़ चल दी।

मीत्या ने, जो भूख से अधमरा-सा हो रहा था, यह समझ लिया कि ख़रगोश हाथ लगने पर ही उसका काम चल सकता है। यदि वह उसका शिकार कर ले, तो बन्दूक की गोली से कुछ सूखी शाखाओं को जलाकर, जैसा कि उसने कई बार अपने पिता को करते देखा था, वह गर्म राख में ख़रगोश को भून लेगा। बन्दूक का निरीक्षण करके तथा गीले कारतूसों को बदलकर वह आगे बढ़ा और जूनिपर की एक झाड़ी के पीछे छिपकर खड़ा हो गया।

उस समय तक बन्दूक का निशाना साधने के लिए काफ़ी रोशनी थी, जब त्राव्का ने 'समतल पत्थर' से नास्त्यावाली पगडण्डी पर ख़रगोश का पीछा करते और पैलेस्तीन को लाँघते हुए उसे उस तरफ़ को मोड़ दिया, जिधर जूनिपर की झाड़ी के पीछे मीत्या छिपा हुआ था। किन्तु इसी समय ऐसा हुआ कि भूरे भेड़िये ने फिर से कुत्ते की भूँक

सुनकर उसी झाड़ी को, जहाँ मीत्या छिपा हुआ था, अपने छिपने के स्थान के रूप में चुन लिया और अब दो शिकारी, मनुष्य और उसका बड़ा शत्रु भेड़िया, दोनों आमने-सामने थे... मीत्या ने जैसे ही उस भूरी थूथनी को अपने से केवल पाँच कदम की दूरी पर देखा, वैसे ही वह ख़रगोश को भूल गया और उसने बन्दूक तानकर भेड़िये पर गोली चला दी।

'भूरे सामन्त' भेड़िये ने जरा भी झटपटाये बिना फौरन दम तोड़ दिया।

गोली चलने से त्राव्का के काम में कुछ विघ्न तो पड़ा, पर वह ख़रगोश का पीछा करती रही। किन्तु इस घटना के सबसे महत्वपूर्ण और सुखद पक्ष का सम्बन्ध न तो ख़रगोश और न भेड़िये से, बल्कि नास्त्या से था। बहुत समीप से ही गोली चलने की आवाज़ सुनकर उसने मीत्या को पुकारा और मीत्या ने उसकी आवाज़ पहचानकर तुरन्त उत्तर दिया। क्षण भर बाद वह उसके पास आ गयी। इसके थोड़ी देर बाद ही त्राव्का ख़रगोश को लिये अपने नये तथा किशोर अन्तीपिच के पास आ पहुँची। तीनों मित्रों ने अलाव के पास बैठकर अपने को गर्माया और वे भोजन तथा आराम करने की तैयारी करने लगे।

हमारे घर से एक घर छोड़कर नास्त्या तथा मीत्या का घर था। अगली सुबह जब उनकी गाय भूख से रँभाने लगी, तो हम ही सबसे पहले यह देखने के लिए वहाँ पहुँचे कि बालक ठीक-ठाक तो है? हम फौरन समझ गये कि उन्होंने रात घर पर नहीं बितायी और यह कि वे दलदल में कहीं रास्ता भूल गये हैं। धीरे-धीरे अन्य सभी पड़ोसी भी इकट्ठे हो गये और हम सब मिलकर यह विचार करने लगे कि अगर वे अभी तक जिन्दा हैं, तो उन्हें कैसे बचाया जा सकता है। हम पूरी दलदल में उन्हें ढूँढ़ने की सोच ही रहे थे कि क्रेनबेरियों के ये दीवाने आगे-पीछे आते दिखायी दिये। डण्डे के सहारे एक भारी टोकरी उनके कन्धों पर टिकी हुई थी और अन्तीपिच की कुतिया त्राव्का उनके पीछे-पीछे आ रही थी।

उन्होंने हमें अपने साहसपूर्ण कार्य का विस्तारपूर्वक विवरण सुनाया। हमने उनके हर शब्द पर पूरी तरह विश्वास कर लिया, क्योंकि क्रेनबेरियों से भरी हुई बहुत बड़ी टोकरी हमारे सामने थी। किन्तु इस बात पर सभी ने विश्वास नहीं किया कि इस लड़के ने, जो अभी ग्यारह साल का भी नहीं हुआ था, एक धूर्त और अनुभवी भेड़िये को मार डाला है। हाँ, जिन्होंने विश्वास किया, उनमें से कुछ लोग बड़ी स्लेज ओर रस्सा लेकर बताये गये स्थान पर चले गये और शीघ्र ही 'भूरे सामन्त' भेड़िये की लाश ले आये। तब तो गाँव का हर आदमी और कुछ अन्य गाँवों के लोग भी अपना कामकाज छोड़कर यहाँ पहुँचे। खूब बातें कीं लोगों ने! यह कहना मुश्किल है कि किसे अधिक देर तक उन्होंने घूरा—भेड़िये को या दोहरे छज्जेवाली टोपी पहने शिकारी को। कभी भेड़िये और कभी लड़के को देखते हुए लोग कहते थे :

"जरा ख्याल करो, हम इस पर हँसा करते थे, इसे 'नन्हा किसान' कहते थे!"

इसके बाद 'नन्हा किसान' धीरे-धीरे तथा लोगों का ध्यान आकर्षित किये बिना ही बदलने लगा और युद्ध के आगामी दो वर्षों में एक लम्बा-तड़ंगा और सुडौल युवक बन गया। यदि युद्ध समाप्त न हो जाता, तो निश्चय ही वह महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में अपनी वीरता से नाम पैदा करता।

और 'सुनहरी मुर्गी' जैसी नास्त्या ने भी हमें चकित कर दिया। हममें से किसी ने भी क्रेनबेरियों के लालच के लिए उसकी आलोचना नहीं की। इसके विपरीत सभी ने इस बात के लिए उसकी प्रशंसा की कि उसने अपने भाई को चालू पगडण्डी पर ले जाने का यत्न किया था और वह इतनी अधिक क्रेनबेरियाँ इकट्ठी कर लायी थी। किन्तु जब लेनिनग्राद से निकालकर लाये गये बीमार बच्चों की सहायता की प्रार्थना लेकर कुछ लोग गाँव में आये, तो नास्त्या ने अपनी सारी पौष्टिक क्रेनबेरियाँ उन्हें सौंप दीं। और तब उसके विश्वासपात्र बन जाने पर हमें यह मालूम हुआ कि लालच करने के लिए उसने मन ही मन अपनी कितनी अधिक भर्त्सना की थी।

अब हमें केवल अपने सम्बन्ध में ही कुछ शब्द कहते हैं। हम कौन हैं और किसलिए 'ब्लूदोवो दलदल' में आये। हम खोजी हैं और दलदल में निहित धन की खोज कर रहे हैं। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के आरम्भ होते ही दलदल से पीट प्राप्त करने के लिए हमने अपना काम शुरू कर दिया था। हमने मालूम किया कि एक बड़े कारखाने को सौ वर्ष से अधिक समय तक चलाने के लिए यहाँ से ईंधन प्राप्त किया जा सकता है। इतना धन हमारी इन दलदलों में छिपा पड़ा है! अब भी बहुत-से ऐसे लोग हैं जो सूरज के महान खजानों के सम्बन्ध में केवल इतना ही जानते हैं कि इनमें शैतान बसते हैं। यह सब बकवास है। इन दलदलों में कहीं भी शैतान नहीं हैं।

1945

अनु.—मदनलाल 'मधु'

परिकल्पना से प्रकाशित कहानियाँ

1. श्रेष्ठ कहानियाँ – प्रेमचन्द
2. चुनी हुई कहानियाँ (चार खण्डों में) – मक्सिम गोर्की
3. चुनी हुई कहानियाँ (दो खण्डों में) – अन्तोन चेखव
4. पाँच कहानियाँ – पुश्किन
5. दो अमर कहानियाँ – लू शुन
6. तीन कहानियाँ – गोगोल
7. अब इंसाफ़ होने वाला है (भारत और पाकिस्तान की चुनिंदा प्रगतिशील कहानियाँ)
8. दोन की कहनियाँ – मिखाइल शोलोखोव
9. वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया – मार्क ट्वेन
10. नन्ही बेस्सी – मार्क ट्वेन
11. बसन्त – सर्गेई अन्तोनोव
12. वसन्तागम – रओ शि
13. स्नेगोवेत्स का होटल – मत्वेई तेवेल्योव
14. वसन्त के रेशम के कीड़े – माओ तुन
15. सूरज का ख़ज़ाना – मिखाइल प्रीश्विन
16. क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें (अक्टूबर क्रान्ति की कथाएं)
17. दास्तान चलती है – अनातोली कुज़्नेत्सोव
18. श्याओ हुङ की चुनी हुई कहानियाँ
19. समय के पंख – कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्स्की
20. श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ
21. कुत्ते का दिल – मिख़ाईल बुल्गाकोव
22. अनजान फूल – आन्द्रेई प्लातोनोव
23. अश्वसेना – इसाक बावेल
24. चम्पा और अन्य कहानियाँ – मदन मोहन
25. लाल कुरता – हरिशंकर श्रीवास्तव

हमारी सम्पूर्ण पुस्तक सूची तथा पुस्तकें मँगाने के लिए
हमें इस पते पर लिखिये :

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
janchetna@rediffmail.com
('जनचेतना' हमारे सभी प्रकाशनों के वितरक हैं)